वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

आधुनिक भारत के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रणेता

अक्तूबर-दिसंबर 1989

वर्ष 21 * अंक 4-5

रु. 2.50

वैज्ञानिक के शुल्क में वृद्धि

छपाई में हुई तीव्र वृद्धि के कारण दिनांक **1–4–1990** से **वैज्ञानिक** की एक प्रति का मूल्य 5.00 रु. होगा। पत्रिका के नियमित ग्राहकों के लिए शुल्क दरें इस प्रकार हैं :

व्यक्तिगत : 15 रु. (एक वर्ष); 40 रु. (तीन वर्ष)

संस्थागत : 25 रु. (एक वर्ष); 70 रु. (तीन वर्ष)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का सदस्यता शुल्क **1–4–1990** से निम्नलिखित होगा :

व्यक्तिगत : 15 रु. (एक वर्ष); 100 रु. (आजीवन)

संस्थागत : 25 रु. (एक वर्ष); 250 रु. (आजीवन)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के सदस्यों को वर्तमान नियमों के अनुसार **वैज्ञानिक** निःशुल्क भेजी जाती है।

वैज्ञानिक में विज्ञापन

हिंदी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में **वैज्ञानिक** अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें.मी. × 21 सें.मी. है।

विज्ञापन की दरें : (एक प्रति के लिए)

अंतिम आवरण	:	रु. 2,500/–
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु. 2,000/–
पूरा पृष्ठ	:	रु. 1,500/–
आधा पृष्ठ	:	रु. 800/–

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता – 1990

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं **राजभाषा कार्यान्वयन समिति** (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज़ पर काली रोशनाई से बनाएं।

पुरस्कार : प्रथम रु. 750/–, द्वितीय रु. 500/–, तृतीय रु. 250/–

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष** पुरस्कार – प्रत्येक रु. 150/– के दिये जायेंगे। अतेव अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 जुलाई 1990

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं **वैज्ञानिक** की संपत्ति होंगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

वैज्ञानिक हेतु रचनाएं आमंत्रित हैं। सभी प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक दिया जाता है। सभी पत्रव्यवहार **वैज्ञानिक** कार्यालय से करें।

वैज्ञानिक

वर्ष : 21 ● अंक 4 व 5

अक्तूबर–दिसम्बर 1989

व्यवस्थापन मंडल

डा. शिव प्रकाश गर्ग
डा. ज्ञानेन्द्र प्रसाद तिवारी
श्री राम प्रसाद
श्री राम निवास आर्य
श्री राम चरण शर्मा
श्री राम प्रकाश हंस

संपादक

डा. जनार्दन स्वरूप
डा. गोविन्द प्रसाद कोठियाल
डा. कैलाश चन्द्र भल्ला
श्री भूपेन्द्र सिंह तोमर

कार्यालय

"वैज्ञानिक"
हिंदी–विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कॉम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
बंबई–400 085.

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष –	15 रु.	10 रु.
तीन वर्ष –	40 रु.	25 रु.
आजीवन –	150 रु.	100 रु.

विदेश में

(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष –	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष –	70 रु.	40 रु.

लेख

पृष्ठ सं.

1. संपादकीय 3
2. पेड़-पौधों का राग-द्वेष 6
   – डा. गेन्दालाल बंसल एवं डा. सत्यपाल चचड़ा
3. जीवन की उत्पत्ति 9
   – ओ. पी. खंडेलवाल
4. परमाणु का प्रतिरूप 12
   – मनीष कुमार गुप्त
5. द्रव्य और विकिरण 17
   – जगदीश मोहन रावत
6. चर्चा–ए–आम 20
   – डा. राज किशोर
7. ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान की शिक्षा के प्रति अरुचि 23
   – आनन्द प्रकाश ढींगरा
8. सामाजिक परंपराओं की वैज्ञानिकता 26
   – रणजीत अजमानी
9. वायु-प्रदूषण 33
   – संजय कुमार सिंह

टिप्पणियाँ :

1. तुलसी में अपार औषधीय गुण 37
   – डा. वासुदेव प्रसाद यादव
2. कीड़ों द्वारा कीड़ों का नियंत्रण 38
   – के. के. पालिवाल
3. फफूंद जनित उपयोगी अम्ल 39
   – गोपाल भारद्वाज
4. दूरवर्ती ग्रह 'नेपच्यून' 41
   – गणेश कुमार पाठक
5. दिल की दास्तान 42
   – सीताराम सिंह 'पंकज'
6. कैल्शियम की उपादेयता 45
   – डा. डी. डी. ओझा

स्तंभ :

विज्ञान कविताएं 8

हिंदी – विज्ञान साहित्य परिषद

पंजीकरण संख्या : BOM 64/70 GBBSD 25-4-1970

ट्रस्ट पं. संख्या : F 2005 बंबई

: कार्यकारिणी :

1989-90

डॉ. आर. चिदंबरम्	—	अध्यक्ष
डॉ. दीन दयाल सूद	—	उपाध्यक्ष
श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी	—	सचिव
डॉ. विजय कुमार जैन	—	सहसचिव
श्री ललित कुमार	—	कोषाध्यक्ष
श्री राम प्रसाद	—	सदस्य
श्री देवकी नंदन	—	सदस्य
डा. दुर्गा प्रसाद पाण्डेय	—	सदस्य
डा. सत्य नारायण त्रिपाठी	—	सदस्य
श्री हरीश कुमार कौरा	—	सदस्य
डा. विजय कुमार मनचंदा	—	सदस्य

: मनोनीत सदस्य :

डा. आर. विजयराघवन

श्री राकेश कुमार

: स्थायी आमंत्रित पदैन सदस्य :

डा. शिव प्रकाश गर्ग – व्यवस्थापक, वैज्ञानिक

डा. जनार्दन स्वरूप – संपादक, वैज्ञानिक

श्री एम. आर. बालकृष्णन् – अध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना सेवाएं

श्री काशीनाथ पाण्डेय – हिन्दी अधिकारी

श्री रमेश चन्द्र पंत – संयोजक, राजभाषा वार्ता

डा. रामशेष – सचिव, राजभाषा कार्यान्वियन समिति,

डा. राजेंद्र नरायण भटनागर– सचिव, केन्द्रीय सचिवालय, हिन्दी परिषद

संपर्क सूत्र : सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद (श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी), अध्यक्ष, प्रगत वेल्डन एवं लेसर अनुभाग विकिरण धातुकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई-400 085.

संपादकीय

क्या भारतीय भारत में बाहर से आये ?

अंग्रेजों के शासनकाल के समय से भारतीय विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है कि आर्य लोग भारत में मध्य एशिया जैसी किसी जगह से आये। उन्होंने भारत के आदिसासियों को समाप्त करके यहाँ नगर बसाये और रहने लगे। मध्य एशिया से निकल कर आर्य लोग चारों ओर फैले और जो दल जिस दिशा में निकल गया, उस दिशा में विजय-पताका लहराता गया। बताया जाता है कि योरोप के कई देशों में राज परिवार मूल रूप से आर्यवंश के ही थे। हिटलर मानता था कि जर्मनी के लोग और इंगलैंड का राजपरिवार आर्य वंशज हैं। जर्मनी के राजचिन्ह में 'स्वस्तिक' इसी मान्यता को प्रदर्शित करता है। ईरान के भूतपूर्व शाह भी मानते थे कि उनका पहलवी वंश मूलरूप से आर्य है। हमारे भारतीय विद्वानों ने भी इस कथन को मान्यता प्रदान की, यद्यपि कुछ देशभक्त विद्वान इसका सदा विरोध करते रहे। भारतीय विद्वानों द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में केवल भारतीयों का बाहर कहीं से आकर बसना ही स्वीकार नहीं किया गया है, बल्कि यहाँ के पुरातत्त्व विज्ञान में भी 'प्रि-आर्यन' (आर्य-पूर्व) और पोस्ट-आर्यन (पश्चात-आर्य), ऐसे शब्दों का उपयोग करके युगों की कालघटनाओं की चर्चा मिलती है। अभी कुछ दिन पूर्व स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' पर आधारित "भारत की खोज' नामक दूरदर्शन-श्रंखला में भी आर्यों को भारत में बाहर कहीं से आया हुआ दिखा कर इस पुराने विवाद को फिर से सजीव कर दिया है। सौभाग्य से इस श्रंखला में आर्यों द्वारा किसी आदिवासी को जान से मारे जाते हुए नहीं दिखाया गया था। परंतु आनेवाली पीढ़ी पर तो इस दृश्य-श्रव्य माध्यम का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा ही कि उनके पूर्वज भारत में लुटेरों की भांति आये थे। दूसरी ओर, हम अपनी इस भारत की पुण्यभूमि से जुड़ी हजारों नहीं, बल्कि लाखों वर्ष प्राचीन सभ्यता की ओर देखते हैं, तो हम सोचने पर विवश हो जाते हैं कि क्या वास्तव में हम बाहर कहीं से आये हैं ?

यदि हम यह मान लें कि आर्य जाति का मूल स्थान मध्य एशिया में कहीं था, तो अनेक प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल पाते हैं। आर्यों ने जड़ प्रकृति के विज्ञान को समझ कर उसका उपयोग अध्यात्म विज्ञान के बहुमुखी विकास में किया और इस परिणाम पर पहुंचे कि परमात्मा जो इस दृश्य सृष्टि का जन्मदाता, पालनकर्ता और संहारकर्ता है, अनन्त है। अतः, उसे प्राप्त करन के साधन (पंथ) भी अनन्त हैं। दूसरा परिणाम यह है कि परमात्मा की प्राप्ति मानव शरीर से ही संभव है, अन्य योनियों से नहीं। यदि एक जन्म में परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई तो बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म-मरण के चक्र में भटक कर अन्त में मानव शरीर से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। अतः, पुनर्जन्म की मान्यता आर्यों की आधारभूत मान्यताओं में से एक है। भारत को छोड़कर यह दोनों परिणाम संसार की किसी भी संस्कृति में कभी नहीं थे और न ही इनके किसी प्रकार के अवशेष किसी सभ्यता में मिलते हैं। भारत का सारा प्राचीन ज्ञान-विज्ञान, कला, गणित, आदि यहाँ तक कि दैनिक जीवन तक प्राचीन काल से इन्हीं मान्यताओं पर केन्द्रित है।

योरोप के निवासी उत्तरी अमरीका के महाद्वीप, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि प्रदेशों में गये। उन्होंने वहाँ के आदिवासियों को चुन-चुन कर भून डाला और आज ये प्रदेश ऐसे योरोप प्रवासियों के स्वतंत्र देश बन गये हैं। फिर भी, योरोप में जो उनका मूल प्रदेश था, क्या योरोपवासी समाप्त हो गये हैं ? नहीं ! तो फिर आर्य जाति ही क्यों अपने मूल स्थान में ऐसी समाप्त हुई कि न तो उसके कोई कभी उस प्रदेश में जीवित रहने के

अवशेष हैं और न ही उन प्रदेशों की संस्कृति में आर्य-संस्कृति की कोई छाप है ? जो जाति अपने उन्नत विचार और बाहुबल के कारण जिस ओर निकल गयी, देश के देश जीतती चली गयी, उस जाति को उसके अपनेघर से भगा देने वाला कौन हो सकता था ? इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मध्य एशिया या अन्य किसी भी जगह पर आर्यों का मूल स्थान नहीं था । भारत में भारतीय कहीं बाहर से नहीं आये । वे यहाँ के मूल निवासी हैं । इसका एक प्रमाण यह भी है कि सर्वसुख संपन्न और बलशाली होते हुए भी प्राचीन भारतीयों ने भारत के बाहर किसी देश पर कभी आक्रमण नहीं किया । यदि भारतीय भारत में बाहर से आये होते तो उनकी प्रवृत्ति दिग्विजय की अवश्य रही होती और उन्होंने भारत के बाहर भी प्रस्थान किया होता ।

तो फिर आर्य जाति के भारत से बाहर मूल स्थान होने की कल्पना किसके मस्तिष्क की उपज हो सकती है ? भारतीयों ने स्वयं तो यह कल्पना कभी कदापि नहीं की होगी । हाँ, अंग्रेजों ने यह राजनैतिक चाल अवश्य चली होगी । भारत पर अपना आधिपत्य सदैव के लिए उत्तरी अमरीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की तरह न्यायिक ठहराने के लिए, उन्होंने अवश्य यह उड़ाया होगा कि जिस प्रकार भारत में भारतीय बाहर से आकर बस गये, उसी प्रकार वे भी आ गये हैं । दुर्भाग्य हमारा कि सफेद चमड़ी या राज्य करने वाली जाति का अन्धानुकरण करने वाले बुद्धिजीवी लार्ड मेकाले को मिल ही गये होंगे और अंग्रेजों के कहने पर ऐसे भारतीयों ने ही इसका अधिक प्रचार भी किया होगा । ऐसे ही भारतीय विद्वानों ने पुरातत्व-विज्ञान में कालगणना की दृष्टि से आर्यों के भारत में आगमन की कोई मनगढ़न्त तिथि भी निश्चित कर डाली होगी ।

योरोप का इतिहास अधिक से अधिक दस हजार वर्ष पुराना है । योरोपवासियों द्वारा हम भारतीयों को यह बताया जाना कि हम कब और कहां से आये, वैसा ही है जैसा कि कोई बच्चा अपने परदादा से कहे कि वे कब और कहां पैदा हुए, यह उसे मालूम है ।

विवेक से दीवालिया, अंग्रेजों का अन्धानुकरण करने वाले एक भारतीय विद्वान से भेंट करने का अनुभव हमें भी हुआ । वे बोले " 'होरा' शब्द यूनानी ज्योतिष शास्त्र में दिनरात के लिए उपयोग किया जाता है, और इसी अर्थ में यह भारतीय ज्योतिष शास्त्र में भी लिया जाता है । इससे यह सिद्ध होता है कि भारत में ज्योतिष शास्त्र यूनान से आया है । " सौभाग्य से एक ही शब्द, होरा के कारण सारा भारतीय ज्योतिष शास्त्र यूनान की भेंट होने की वाहियात दलील हम इससे पहले किसी पुस्तक में पढ़ चुके थे और इसका प्रत्युत्तर भी प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्रामी, पं. बाल गंगाधर तिलक की एक पुस्तक में पढ़ चुके थे, जिससे यह भी स्पष्ट हो गया था कि यह बकवास भी अंग्रेजों ने ही आरंभ की थी और बहुत समय पूर्व से भारतीय विद्वान इसका उत्तर भी देते आ रहे थे । हमने उनसे कहा "होरा शब्द संस्कृत के अहोरात्र का अपभ्रंश है, और यदि यह यूनानी ज्योतिष शास्त्र में दिनरात के लिए उपयोग होता है, तो आपकी दलील के अनुसार भारत से ज्योतिष शास्त्र यूनान गया था । " यह बात उन्होंने नहीं मानी और उठ कर चले गये । वास्तव में भारतीयों को उनकी अपनी नजर में नीचा गिराने के लिए अंग्रेजों ने ऐसी कई भ्रांतियां इस देश में फैलायी थीं ।

भारतीयों को आपस में विभाजित करने के लिए एक भ्रांति यह भी फैलायी गयी कि उत्तर भारत पर तो बाहर से आये आर्यों ने अधिकार कर ही लिया, परन्तु दक्षिण भारत की मूल जाति द्रविड़ है जो आज भी दक्षिण भारत में अस्तित्व में है । इस प्रकार, उत्तर और दक्षिण, दो प्रकार की जातियों की रचना और उसके साथ भारत का दो जातियों में विभाजन उन्होंने कर डाला । इसे भी भारत के अनेक विद्वान आज भी स्वीकार करते हैं । इस विभाजन का कारण दक्षिण भारत की भाषाओं की विभिन्नता बताया जाता है ।

वास्तव में देखा जाए तो भाषा की विभिन्नता की दलील भी गलत है । दक्षिण भारत में चार भाषाएं

प्रचलित हैं; तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। इनमें तमिल को छोड़कर बाकी तीनों भाषाओं के वर्णाक्षर संस्कृत जैसे ही हैं और उसी क्रम में हैं। अतः, ये तीन भाषाएं तो संस्कृत से ही निकली हैं जिसे आर्यों की भाषा कहा जाता है। तमिल भाषा के स्वरों में अनुस्वार (अं) और विसर्ग (अः) नहीं होता है, परन्तु इनके स्थान पर अन्य तीनों भाषाओं की तरह कुछ अन्य स्वर भी होते हैं जो संस्कृत में नहीं होते। तमिल में इन स्वरों का काम अन्य अक्षरों से लिया जाता है। कुल मिला कर तमिल में बारह स्वर होते हैं। इसके अतिरिक्त, व्यंजनों में महाप्राण (क का महाप्राण ख) अक्षर नहीं होते हैं, और क, च, ट, त – वर्गों के चार-चार अक्षरों के लिए भी एक ही अक्षर होता है। कुछ अन्य ऐसे अक्षरों को मिलाकर जो संस्कृत में नहीं होते हैं, प्राचीन तमिल में अठारह व्यंजन होते हैं। यह भाषा भी उतनी ही वैज्ञानिक और तर्कसंगत है जितनी संस्कृत या भारत की अन्य कोई भाषा। केवल चार वर्गों के चार अक्षरों के कारण यह कहना सर्वथा अनुचित है कि यह भाषा आर्य जाति की संस्कृत भाषा से भिन्न किसी द्रविड़ जाती की भाषा है। यह कहा जाता है कि तमिल भाषा संस्कृत से नहीं निकली है और यह संस्कृत के बराबर ही प्राचीन है। इसका निर्णय तो भाषा शास्त्री ही कर सकता है। परन्तु, तमिल और संस्कृत भाषाओं की वैज्ञानिकता को देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि दोनों का विकास करने वाले समान रूप से बुद्धिमान थे। तमिल का विकास करने वालों को महाप्राण अक्षर अपनी भाषा में प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, इसलिए ये अक्षर इस भाषा में नहीं हैं। आधुनिक तमिल में संस्कृत के कुछ उच्चारणों का समावेश करने के लिए, इसके व्यंजनों में पाँच की वृद्धि करके, अब कुल 23 व्यंजन कर दिये गये हैं।

विष्णु पुराण में जिसके बारे में केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह 3500 वर्षों से अधिक प्राचीन है, एक श्लोक के अनुसार भारत को समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण का प्रदेश बताया गया है। यानी सांस्कृतिक रूप से कहे जाने वाले एक देश में एक ही मानव जाति अनादि काल से रहती आ रही है। इसमें आर्य और अनार्य या द्रविड़ का कोई भेद नहीं रहा है। इसी एक जाति द्वारा विकसित वर्तमान काल की विभिन्न भाषाएं हैं। आर्य और द्रविड़ जाति में उत्तर और दक्षिण के भारतीयों का विभाजन अंग्रेज़ों की एक राजनैतिक चाल थी।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि अंग्रेजों ने भारत पर अपने अन्यायपूर्ण राज्य को तर्कसंगत बनाने के लिए कैसी-कैसी भ्रान्तियां फैलायी थीं। अब उनका राज्य भी समाप्त हो गया और उसके साथ उसके राजनैतिक कारण भी। भारतीय विद्वानों को अब वास्तविकता समझ कर, इस प्रकार के झूठे प्रचार को समाप्त कर देना चाहिए ताकि अगली पीढ़ी को यह न लगे कि उसके पूर्वज लुटेरों की तरह कभी भारत में आये थे, जैसा कि दूरदर्शन की श्रृंखला में दिखाया गया था। पुरातत्व विज्ञान में भी कालगणना हेतु प्रयुक्त शब्द 'आर्य-पूर्व' और 'पश्चात-आर्य' मिटा दिये जाने चाहिए। हड़प्पा और मोहन्जोदड़ों की सभ्यताएं आर्य सभ्यताएं ही हैं, आर्य-पूर्व नहीं। सांस्कृतिक रूप से हम भारतीय अनादि काल से एक रहे हैं और आगे भी रहेंगे।

* * *

प्रस्तुत अंक में विज्ञान के विभिन्न विषयों पर लेखों के साथ-साथ सामाजिक रीतियों पर भी विचारोत्तेजक लेख दिये जा रहे हैं। आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा है।

—डा. जनार्दन स्वरूप

* * *

वैज्ञानिक का चन्दा

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका "वैज्ञानिक" का चन्दा समाप्त हो गया हो, तो शुल्क भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें, अन्यथा अगले अंक नहीं भेजे जा सकेंगे।

—संपादक

पेड़ पौधों का राग-द्वेष

● डा. गेन्दालाल बंसल एवं डा. सत्यपाल चचड़ा ●

आधारभूत विज्ञान शिक्षण विभाग, हि. प्र. कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर (कांगडा)–176062.

वनस्पति स्थावर होती है। अतः, अन्य प्राणियों की तरह हाथ, पांव, सींग, चोंच, पंजे या पंख आदि चला कर अपना बचाव नहीं कर पाती है। अपना अस्तित्व अन्य वनस्पति के बीच बनाये रखने के लिए प्रकृति ने पेड़-पौधों को भी कुछ रासायनिक अस्त्र-शस्त्र दिये हैं जिनका उपयोग करके ये भी मित्रता या शत्रुता करते हैं। प्रस्तुत है इस आधुनिक विचारधारा का रोचक वर्णन।

अस्तित्ववाद के सिद्धान्त के अनुसार जो प्राणी सर्व श्रेष्ठ है वह अपने से निर्बल का दमन कर के अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखता है। इस सिद्धान्त से पता चलता है कि सभी प्राणी संघर्षरत हैं। अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए एवं अपने वंश की वृद्धि के लिए वे अन्य प्राणियों से राग एवं द्वेष करते हैं। राग-द्वेष की यह प्रवृत्ति जीव-जगत में तो स्पष्ट है किन्तु अब यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह प्रवृत्ति वनस्पति-जगत में भी विद्यमान है।

इस प्रवृत्ति का आभास उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तब हुआ जब अमरीका के किसानों ने कुछ प्रकार की मिट्टी में "उर्वरता के अभाव" के बारे में सूचित किया। जब एक प्रकार के पौधों को कई पीढ़ियों तक एक ही भूमि पर उगाया गया तो वहाँ की मिट्टी की उर्वरता में कमी पायी गयी। इसे "मृदा रुग्णता समस्या" का नाम दिया गया। इस समस्या से संबंधित प्रथम सुझाव 1832 में फ्रांस के कृषि विज्ञानी डि कैण्डोले ने दिया। उन के अनुसार, मृदा की रुग्णता फसल के पौधों द्वारा छोड़े गये निःस्रावण द्वारा हो सकती है और इस समस्या का निदान उसी भूमि पर विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने से संभव है। इस दिशा में विशेष प्रगति तब आरम्भ हुई जब 1937 में जर्मन वैज्ञानिक मौलिश ने अपना कार्य "अलीलोपैथी" उपशीर्षक से प्रकाशित किया। इस अद्भुत प्रकाशन से एक पौधे का दूसरे पौधों पर प्रभाव एवं तज्जनित राग-द्वेषात्मक समस्याओं पर कार्य का नया युग प्रारम्भ हो गया। राग-द्वेष की इस प्रवृत्ति का महत्व नैसर्गिक एवं पारिस्थतिक परिवेष में विशेष कर देखा जाने लगा। तब से अब तक कई प्रकार के रोचक अनुसंधान किये गये हैं।

राग-द्वेष की यह प्रवृत्ति मूलरूप से व्यतिकरण अर्थात् हस्तक्षेप की एक घटना है एवं वशीकरण वाद का एक उदाहरण है, जब एक जीव अपने को अक्षुण्ण रखते हुए दूसरों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखता है। कई जीव-विज्ञानियां के मतानुसार यह प्रवृत्ति एक प्रकार की आक्रामक प्रतिद्वंदता है। कई वैज्ञानिक प्रतिद्वंदता एवं राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति में एक प्रमुख अन्तर पाते हैं। उनके अनुसार, प्रतिद्वंदता एक ऐसी अन्योन्य क्रिया है जिसमें पौधा परिवेष में विद्यमान जीवनदायक स्रोत, अर्थात् पौष्टिक तत्व, जल, खनिज, प्रकाश आदि का उपयोग अपने लिए करता है यद्यपि इन स्रोतों की आवश्यकता प्राकृतिक वास में अन्य पौधों को भी होती है। किन्तु राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति में पौधा परिवेष में कुछ ऐसे रासायनिक यौगिकों का योगदान करता है जो अन्य पौधों के लिए संवर्धक अथवा मारक हो सकते

हैं। कुछ वैज्ञानिक ऐसा भी अनुमान लगाते हैं कि सभी जीव तंत्र तथा चयापचय जन्य क्षतिकारक उत्पाद का प्रबंध अपने-अपने ढंग से करते हैं। कई पौधे तो उन्हें बाहर उत्सर्जित कर देते हैं और कई इन उत्पादों को पौधे के किसी ऐसे भाग में एकत्रित होने देते हैं जिस में क्षति कम से कम हो और जिसे कालान्तर में हानि रहित पदार्थ में रूपान्तरित किया जा सके। अतः, राग-द्वेषी पदार्थों की उत्पत्ति चयापचय जन्य हानिकारक पदार्थों के प्रबंध-तंत्र के रूप में हुई।

राग-द्वेषात्मक क्रिया में पौधे जो रसायन छोड़ते हैं, उन्हें राग-द्वेषी रसायन कहा जाता है। यह रसायन द्वितीय मूलज के हैं और राग-द्वेषी पौधों द्वारा निःस्रावित किये जाते हैं, जिससे आस-पास के पौधे या तो घायल हो जाते हैं या उन्हें अंकुरण में रुकावट आती है। इन रसायनों में एथिलीन, इथिरिक तेल, फिनौलिक यौगिक, एल्कालायड, ग्लाइकोसाइड, और कुमरिन व्युत्पन्न रसायन प्रमुख हैं। कुछ पौधे वाष्पशील पदार्थ वायुमंडल में छोड़ते हैं और कुछ का पर्णसमूह इन रसायनों को वर्षाजल में निक्षालित कर देता है। इस प्रकार पौधे अपने परिवेश में अपना प्रभुत्व बनाये रखते हैं। प्रकृति में चार प्रकार की राग-द्वेषात्मक क्रियाएं पायी गयी हैं।

1. **स्वराग-द्वेषी क्रिया** – इस क्रिया में उत्पन्न रसायन पौधे की अपनी ही वृद्धि का निरोध करता है।
2. **सर्वराग-द्वेषी क्रिया** – इस क्रिया में उत्पन्न रसायन प्रदायक की वृद्धि को छोड़ कर अन्य पौधों की वृद्धि का निरोध करता है।
3. **वास्तविक राग-द्वेषी क्रिया** – इस क्रिया में प्रदायक पौधा क्रियाशील यौगिक निःस्रावित करता है।
4. **कार्यशील राग-द्वेषी क्रिया** – इस किया में छोड़े गये रसायन, वह पूर्ववर्ती रसायन होते हैं जो बाद में जीवाणुओं द्वारा राग-द्वेषी रसायनों में परिवर्तित कर दिये जाते हैं।

राग-द्वेषी क्रियाओं को दर्शाने के लिए कुछ प्रमुख उदाहरण नीचे दिये गये हैं :

रागात्मक क्रियाएं :

1. युगोस्लाविया में एक अनाज-गेगला नामक खरपतवार पाया जाता है जो गेहूं की उपज मात्रा बढ़ाता है।
2. आलुओं के साथ सरसों बोने पर सरसों की उपज मात्रा बढ़ जाती है।
3. सागवान के पेड़ों के बीच बाँस उगाने पर उसमें कीट विकर्षक गुण आ जाते हैं।
4. गेहूँ के साथ यदि देसी अलसी बोयी जाये तो जलधर नामक खरपतवार की वृद्धि मन्द पड़ जाती है।

द्वेषात्मक क्रियाएं :

1. काले अखरोट द्वारा की गयी जीव-विषाक्ता प्रसिद्ध है। अखरोट के निकट लगी टमाटर या अन्य फसलें या तो अकाल पक्व हो कर मर जाती हैं या उनमें जीव विषाक्ता के रोग-लक्षण पैदा हो जाते हैं। बर्लिंग्टन के निकट वनों में, छोटे-छोटे पौधे तो क्या भूर्ज के बड़े-बड़े पेड़ भी, जो काले अखरोटों के निकट उगे हुए थे, मर गये।
2. खरपतवार कई उपयोगी पौधों को बढ़ने नहीं देती, जैसे नागर मोथा नामक खरपतवार चावल और मक्के की वृद्धि को रोकता है। जलधर, दम, अटकारा नामक घासे गेहूँ के लिए विषाक्त हैं।
3. दूदली और सूर्यमुखी कुछ ऐसे पौधे हैं जो फलीदार पौधों की जड़ों में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले बैक्टीरिया की क्रियाशीलता को को मन्द कर देते हैं।
4. सैलविया नामक झाड़ी अपने पत्तों द्वारा वाष्पशील तैल वायुमंडल में छोड़ती है जो अड़ोस-पड़ोस के एक-ऋत्वक पौधों के अंकुरण तथा वृद्धि के लिए विषाक्त है।
5. चीढ़ तथा सफेदे के वृक्षों के निकट वनस्पति की उपज प्रायः नगण्य होती है।
6. मक्की की जड़ों के अवक्षेप मिट्टी में रह जाने से अगली फसल, गेहूँ के अंकुरण और शिशु पौधों की वृद्धि में भारी कमी हो जाती है। गेहूँ का भूसा अपनी स्वद्वेषात्मक प्रवृत्ति के कारण गेहूँ की वृद्धि को घटा देता है। अलसी, सूरजमुखी, चौलाई और सफेदे के वृक्षों में भी स्वद्वेषी प्रवृत्ति पायी जाती है। इनकी इस प्रवृत्ति के

कारण पेड़ों के बीच रिक्त स्थानों को नई पौध से पुनः भरा नहीं जा सकता।

पारस्परिक रागात्मक क्रिया :

यदि कुट्टू, भरेस और जई को साथ-साथ उगाया जाये, तो उनकी उपज 20 से 30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। उन्हें अलग-अलग बोने पर उपज कम होती है।

पूरक किंतु विरोधाभासी क्रिया :

काली वसुंटी तथा फुलडूं को साथ-साथ उगाने पर काली वसुंटी फुलडूं के साथ द्वेषात्मक व्यवहार करती है किन्तु फुलडूं इसके विपरीत काली वसुंटी से रागात्मक व्यवहार करता है और काली वसुंटी की वृद्धि को और बढ़ाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिमाचल प्रदेश के जो भाग पहले फुलडूं से ग्रस्त थे अब उनका स्थान विषाक्त काली वसुंटी ने ले लिया है।

राग-द्वेषी एवं सस्य रसायन :

सस्य रसायनों के उत्पादन एवं अनुसंधान में राग-द्वेषी क्रियाओं के योगदान का बहुत महत्व है। राग-द्वेषी पौधों द्वारा निःस्रावित किये गये रसायन कीटाणु नाशक हो सकते हैं अथवा कीटाणु नाशक रसायनों को बनाने वाले पूर्ववर्ती रसायन हो सकते हैं। वास्तव में विकसित पौधे और जीवाणु दोनों ही इन रसायनों के अच्छे स्रोत हैं और आवश्यकतानुसार उनकी राग-द्वेषी प्रवृत्ति का उपयोग किया जा सकता है। कपूर के पौधे में पाया जानेवाला सिनियोल रसायन अब शाकनासी रसायन के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त, स्ट्रैप्टोमाइसेज कक्षा के पौधों के यूष में कई प्रकार के शाकनासी रसायन पाये गये हैं। निकट भूत में जैव तकनीक द्वारा एग्रोस्टेम गिथागो नामक पौधे का अर्क अब राग-द्वेषी रसायन एग्रोस्टेमिन बनाया गया है जो गेहूँ की उत्पादकता बढ़ाने में प्रयोग किया जा रहा है। स्पष्ट है कि जैव तकनीक सस्य-रसायन संश्लेषण में बहुत सहायक हो सकती है एवं यह तभी सम्भव हुआ है जब पौधों में राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति का पता चला है।

* * *

विज्ञान कविता

परमाणु बिजली घर

नाभिकीय ईंधन मिला, हमको खूब महान।
नवयुग में हम को मिला, आज यह वरदान॥
ताप और पन बिजलीघर, विद्युत देते आज।
यूरेनियम भी मिल गया, इस श्रृंखला में आज॥
बिजली की बढ़ती खपत को, पूरा करने की ठान।
परमाणु घर स्थापित हुए, भारत देश महान॥
तारापुर और मद्रास से, बिजली बनती खूब।
राजस्थान भी दे रहा, परमाणु शक्ति भरपूर॥
परमाणुशक्ति का आज यह, सर्वश्रेष्ठ उपयोग।
नरोरा की बिजली का भी, सभी करेंगे उपयोग॥
दस हजार मेगावाट का, लिया हमने संकल्प।
विद्युतशक्ति बढ़ाने को और नहीं है विकल्प॥
पांच सौ मेगावाट की भी डिज़ाइन है तैयार।
शीघ्र स्थापित होकर, होंगे परमाणु घर तैयार॥
काकरापार और कैगा की प्रगति हम सराहते।
राजस्थान और तारापुर की वृद्धि आज निहारते॥
अंतर्मन में विश्वास जगा है इक दिन ऐसा आयेगा।
लक्ष्य हमारा पूरा होगा, राष्ट्र प्रगति पर जायेगा॥
अनवरत बिजली पैदा करें, सभी परमाणु घर आज।
यही कामना नित सदा, यही प्रार्थना आज॥

–दिलीप भाटिया,
एच–2 बी/19, एन टी सी कालोनी,
अणुशक्ति-323303 कोटा (राजस्थान)

जीवन की उत्पत्ति

ओ. पी. खंडेलवाल,
67, शिक्षक नगर, वी.आई.पी. रोड, इंदौर-452 005.

"आधुनिक खोजों द्वारा वैज्ञानिक अब यह स्वीकार कर रहे हैं कि आर. एन. ए. ही प्रथम जीवन रहा होगा। परन्तु एक प्रश्न का हल अभी ज्ञात नहीं हुआ है कि वर्तमान में बेक्टीरिया में चलने वाली क्रियाएं डी. एन. ए. के माध्यम से संचालित होती हैं, परन्तु यह प्रथम जीवन आर. एन. ए. से डी. एन. ए. की ओर कैसे परिवर्तित हुआ? प्रस्तुत लेख में इस विषय पर काफी रोचक तथ्य दिये गये हैं।

प्रस्तावना :

पृथ्वी का पूर्व-वायुमंडल जीव-रासायनिक तत्वों से भरा हुआ था। इन्हीं रसायनों ने मिलकर पृथ्वी पर "जीवन" को जन्म दिया होगा। जीवित ज्वाला मुखियों ने भी बहुत से यौगिकों को वायुमण्डल में प्रसारित किया। धूमकेतु एवं उल्काओं के द्वारा जीवन से संबंधित तत्वों को पृथ्वी को प्रदान किया गया। ज्वालामुखी की गर्मी से, पराबैंगनी किरणों के विकिरण से, तड़ित चालक से और सूर्य द्वारा पृथ्वी पर भेजी गयी ऊर्जा के द्वारा सरल कार्बनिक रसायन जटिल कार्बनिक रसायनों में परिवर्तित हुए थे। अन्ततः, इन्हीं रसायनों में स्वयं का विभाजन हुआ होगा जिससे वे एक "जीवन" में बदल गये होंगे। यह प्रक्रिया पृथ्वी के प्रथम एक अरब वर्षों में तेजी से संचालित हुई होगी। पृथ्वी पर इसी समय में कभी जीवन का पदार्पण हुआ होगा। पृथ्वी पर पाये जाने वाले अवशेष के द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि जीवन ने आज से करीब 3.5 अरब वर्षों पूर्व अपना अस्तित्व बना लिया होगा।

पूर्व-पृथ्वी का रासायनिक वायुमण्डल :

डॉ. हेराल्ड यूरे ने 1952 में यह प्रतिपादित किया था कि जीवन पृथ्वी के पूर्व-वायुमण्डल से कैसे उदित हुआ है, जबकि उस वायुमण्डल में प्राण वायु नहीं थी। डॉ. एस. एल. मीलर वे पहले सफल व्यक्ति हैं, जिन्होंने प्रयोग के माध्यम से यह सिद्ध किया था कि "जीवन" किस प्रकार से पृथ्वी पर आया था। डॉ. मीलर ने मीथेन, अमोनिया, हाइड्रोजन व जल के मिश्रण में विद्युत स्पार्क प्रवाहित कर एमिनों एसिड (ए.ए.) को प्राप्त किया था। ये ही ए.ए. जीवन के मकान की ईंटे थीं। डॉ. मीलर के विचार में पृथ्वी के पूर्व-वायुमंडल में उपरोक्त गैसें थीं। तड़ित चालक के माध्यम से ये गैसें जीवन से संबंधित अणुओं में बदल गयीं थीं।

यूरे ने ऐसे वायुमण्डल का चित्रण किया था जिसमें हाइड्रोजन व मीथेन की अधिकता थी। उनके अध्ययन से बृहस्पति एवं शनि के वायुमण्डल में भी हाइड्रोजन की प्रचुरता थी। उन्होंने यह अनुमान लगाया था कि पृथ्वी के पूर्व-वायुमंडल में भी उपरोक्त गैसों की ही प्रचुरता होनी चाहिए। आधुनिक अध्ययनों से यह पता चला है कि उस समय मीथेन, अमोनिया व हाइड्रोजन की मात्रा बहुत कम थी। फिर भी मीलर व यूरे के प्रयोगों ने यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी पर उपरोक्त अभिक्रियाओं के द्वारा ही "जीवन" का प्रथम चरण शुरू हुआ होगा। इसी प्रकार की अभिक्रियाएं अन्य ग्रहों में भी चल रही हैं।

ग्रह मण्डल का निर्माण :

हमारे ग्रह मण्डल को निर्मित हुए 4.5 अरब वर्ष हो चुके हैं। इसका निर्माण अन्तर्ग्रहमण्डलीय गैस के बादलों एवं धूल के कणों से हुआ होगा। यह बादल घूमती हुई तश्तरी में बदल गया जो धूल एवं अणुओं से भरा हुआ था। इसके द्वारा ही सूर्य, ग्रह-मण्डल, चन्द्रमा, उल्काएं व धूमकेतु बने होंगे। बुध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल जैसे आंतरिक ग्रहों में अधिक परमाणु भार वाले तत्व समा गये, जबकि बाहरी ग्रहों जैसे बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून व प्लुटो में इन तत्वों का अनुपात कम था। हाइड्रोजन एवं हीलीयम की अधिकतम मात्रा बृहस्पति व शनि में होने से वहां का तापमान–120° से. था। सूर्य के नजदीक होने से आंतरिक ग्रह मण्डल का तापमान अधिक था। अतः, यहां पर हाइड्रोजन एवं अन्य हल्के तत्वों की मात्रा, बाहरी ग्रहमण्डल के अनुपात में कम थी। इस प्रकार, पृथ्वी के पूर्व-वायुमण्डल में हाइड्रोजन, मीथेन व अमोनिया उतनी अधिक मात्रा में नहीं थी जितनी कि मीलर ने अपने पहले प्रयोग में उपयोग की थी।

पृथ्वी के बाहर पाये जाने वाले कार्बनिक यौगिक :

शोधकर्ता अब इस मान्यता को मानकर चल रहें हैं कि पृथ्वी के बाहर से आने वाले पदार्थों में से कार्बनिक यौगिक महत्वपूर्ण माध्यम रहे होंगे। इन यौगिकों ने ही "जीवन" को आगे बढ़ाने में मदद की होगी। इन प्रमाणों से सिद्ध हुआ है कि 3.8 अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी पर उल्काओं के माध्यम से ही (5 प्रतिशत) कार्बनिक यौगिक पृथ्वी पर आते रहे। जल एवं अम्ल के साथ इन यौगिकों के मिलने से हमें डी-ऑक्सी-रायबो न्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) व रायबोन्यूक्लिक एसिड (आर.एन.ए.) प्राप्त होते हैं। इससे यह लगता है कि "जीवन" के लिए लगने वाले मूल कार्बनिक यौगिक उल्काओं द्वारा पृथ्वी पर लाये गये होंगे।

ग्रहों के मध्य के वायुमण्डल में भी बहुत से कार्बनिक यौगिक पाये गये हैं। एक अंदाज के द्वारा प्रतिवर्ष दस हजार टन धूल पृथ्वी पर लायी जाती है। यह ग्रहों की धूल सूर्य के नजदीक जाने वाले धूमकेतुओं से बनती है। इनमें कार्बनिक यौगिक भी पाये जाते हैं। संभव है कि यह कार्बनिक यौगिक पृथ्वी पर भी आये होगें।

वेगा व गियटो अंतरिक्ष यानों ने हैली धूमकेतू में बहुत से कार्बनिक पदार्थ पता लगाये हैं। इनमें सबसे प्रमुख फार्मलडीहाइड था। पृथ्वी के पूर्व-वायुमण्डल से ज्ञात हुआ है कि फार्मल्डीहाइड ने एमिनों एसिड व कार्बोहाईड्रेट के बनाने में मुख्य भूमिका निभायी थी। धूमकेतुओं के पृथ्वी पर आकर बिखरने से बहुत बड़ी मात्रा में ऐसे कार्बनिक पदार्थ फैले होंगे जिससे "जीवन" की प्रक्रिया शुरू की जा सके।

मंगल व शुक्र पर गये अंतरिक्ष यानों से यह पता चला कि इन ग्रहों के वायुमण्डल में कार्बन डायऑक्साइड की प्रचुरता है। इन ग्रहों में मामूली-सा पानी होने की संभावना भी व्यक्त की गयी है। हम इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि पृथ्वी के पूर्व-वायुमण्डल में भी कार्बन डायऑक्साइड की प्रचुरता रही होगी।

जीवन का उद्भव :

हम निश्चित रूप से इससे अधिक कुछ नहीं जानते हैं कि सरल अणुओं ने किसी प्रक्रिया द्वारा जटिल अणुओं का निर्माण किया होगा। साथ ही, "जीवन" से संबंधित जो भी रासायनिक अभिक्रियाएं संचालित हुई थीं वे सभी पृथ्वी की पूर्व-अवस्था पर निर्भर थीं।

हमारी पृथ्वी 45,000 लाख वर्ष पुरानी है, जबकि मानव सिर्फ आज से 50 हजार वर्ष पूर्व अवतरित हुआ है। पृथ्वी 40,000 लाख वर्ष पूर्व उल्काएं बहुत अधिक मात्रा में विस्फोटक गति से गिरी होंगी। शायद इस घटना से जीवन का उदय नहीं हुआ होगा। अगर हुआ भी होगा तो वह काल-कलवित हो चुका होगा। हमें इतने ही वर्ष "पूर्व-जीवन" के जीवाश्म मिलते हैं। उपरोक्त कल्पनाओं से हम अनुमान लगा सकते हैं कि "जीवन" 35,000–40,000 लाख वर्ष के मध्य कभी उदित हुआ होगा।

40,000 लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी की क्या अवस्था थी। इस बारे में हमारे विचार अब मीलर व युरे द्वारा प्रतिपादित मॉडल से बदल चुके हैं। अब हम यह विश्वास करते हैं कि पूर्व-वायुमण्डल में, जलवाष्प, कार्बनडायऑक्साइड व नाईट्रोजन की प्रचुरता रही होगी। इसमें मीथेन, हायड्रोजन व अमोनिया की मात्रा बहुत कम थी अथवा नहीं थी। समुद्र के निचले भाग में जल व खनिज के साथ कार्बनिक यौगिक बाहरी वायु-मण्डल से आ चुके थे। उस समय का तापमान आज के तापमान से अधिक भिन्न नहीं था।

जीवन से संबंधित जटिल कार्बनिक अणु पृथ्वी के पूर्व-वायुमण्डल से कैसे आये होंगे, हमें स्पष्टतः यह ज्ञात नहीं हैं। परन्तु उल्काओं, अन्तरग्रहों की धूल व धूम-केतुओं से लाये गये सरल कार्बनिक अणुओं के साथ, पृथ्वी वायुमण्डल में हुए विद्युत डिस्चार्ज, पैराबैंगनी किरण व अन्य ऊर्जा के स्रोत जो तत्कालीन अवस्था में उपस्थित थे, उनकी अभिक्रियाओं से जटिल कार्बनिक अणु बने होंगे। सरल कार्बनिक अणु पहले जल में अथवा पृथ्वी की सतह पर उपस्थित पदार्थों से प्रक्रिया कर एमिनो एसिड, न्युक्लिओवटाइड एवं इसके पश्चात् प्रोटीन व न्युक्लिक एसिड बने होंगे। पृथ्वी की तत्कालीन रासायनिक अभिक्रिया में हाइड्रोजन सायनाईड एक महत्वपूर्ण ऊर्जा संग्रहीत करने वाला यौगिक था। क्रम से शुरू एवं गीले वायुमण्डल में हुए बदलाव से, जो अणु शुष्क अवस्था में बने थे वे समुद्रीय जल से साफ हुए होंगे। पुनः सूर्य की अधिक गर्मी से शुष्क वायुमण्डल बना होगा। कन्डेनसेशन की प्रक्रिया इसी प्रकार के शुष्क वायुमंडल से संचालित हुई होगी। अनेक वर्षों तक कार्बनिक यौगिक तालाब व समुद्र में आकर मिलते रहे होंगे। फिर और अधिक शुष्क वायुमण्डल से, और अधिक अणुभार वाले अणुओं का निर्माण हुआ होगा। यही अभिक्रिया बार-बार दोहरायी गयी होगी। अन्ततः बहुत बड़े अणुभार वाले यौगिक आ गये होंगे जिन्होंने जीवन को उत्पन्न करने में मदद की होगी। पृथ्वी की सतह पर पाये जाने वाले क्षार एवं खनिज इत्यादि ने उत्प्रेरक के रूप में कन्डेनसेशन की क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी।

"जीवन" के लिए आवश्यक अणुओं को दो भागों में विभाजित किया जाता है, एकलक (मोनोमर्स) व बहुलक (पोलीमर्स)। ये अणु विशेष परिस्थितियों में आपस में जुड़ते चले जाते हैं। परंतु इसके साथ ही वायु मण्डल में पाये जाने वाले कई अणु 'जीवन' विकास में अवरोध भी पैदा करते हैं। अतः प्रश्न यह है कि प्रकृति ने जीवन विकास की प्रक्रिया में अपने-आपको वायु-मण्डलीय विष से कैसे बचाया होगा। यूं तो वर्तमान में "जीवन" में एक महीन "झिल्ली" सूक्ष्म जीवाणुओं की सुरक्षा के लिए सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। फिर भी प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि तत्कालीन पृथ्वी पर पाये जाने वाले अणुओं से ठीक इसी प्रकार की झिल्ली नहीं बनायी जा सकती है। फिर भी यह झिल्ली कैसे बनी ? यह प्रश्न अभी अनुत्तरित है।

6. वंशाणु (जीन्स) की उत्पत्ति :

एक कोषीय जीवन में जीन्स के निम्नलिखित कार्य हैं; (1) संश्लेषण की क्रिया में डायरेक्टर का काम यानी डी-ऑक्सो-रायबो न्युक्लिक एसिड (डी.एन.ए.), रायबोन्युक्लिक एसिड के माध्यम से संदेश प्रवाहित करना, (2) पैतृक गुणों को अगली पीढ़ी में पहुंचाना, इत्यादि। किसी भी जीवन को उत्पन्न होने से पहले उनमें जीन्स का होना आवश्यक है। अतः, जीन पहले उत्पन्न हुए होंगे। परन्तु हमारे सामने एक प्रश्न अभी भी उलझा हुआ है कि डी.एन.ए., प्रोटीन व आर.एन.ए. में से पहले कौन आया था। यह प्रश्न बिल्कुल वैसा ही है जैसे कि मुर्गी पहले आयी या अण्डा। वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आर.एन.ए. में भी स्वयं विभाजित होने की क्षमता होती है। यह आर.एन.ए. ही एक जीन के रूप में स्थापित हुआ होगा।

7. उपसंहार :

उपरोक्त निष्कर्षों से हम यह प्रस्तावित कर सकते हैं कि प्रथम "जीवन" आर.एन.ए. से बना होगा। परन्तु हमारी एक समस्या अभी तक सुलझी नहीं है कि कि डी.एन.ए. पहले आया या प्रोटीन। हमारा ध्यान तत्कालीन पृथ्वी के वातावरण में आर.एन.ए. के संश्लेषण की तरफ आकर्षित हो जाता है। वैज्ञानिक अभी इस बात की खोज कर रहे हैं कि "जीवन" की स्थापना करने में पहला कौनसा पोलीमर था ?

* * *

परमाणु का प्रतिरूप

मनीष कुमार गुप्त
III/3, डैम कालोनी, श्रीनगर, पौडी (गढ़वाल)–246 174.

परमाणु की बनावट की वर्तमान मान्यता का सूत्रपात रदरफोर्ड ने अपने प्रसिद्ध प्रयोग से किया था जिसमें उन्होंने पाया कि कुछ एल्फा कण धातु की पतली-सी पन्नी से टकराकर वापस लौट आये। उस समय की जानकारी के अनुसार, इस घटना को ऐसे आश्चर्य के साथ देखा गया जैसे कोई तोप का गोला कागज से टकरा कर वापस लौट आया हो। परन्तु, इस आश्चर्य ने परमाणु की बनावट की ऐसी पक्की नींव डाल दी, जो आजतक हिली नहीं है, केवल उसमें सुधार होते रहे हैं। परमाणु की बनावट की लंबी कहानी का रोचक वर्णन प्रस्तुत है।

जब परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन की खोजें हो गयीं तो सर जे. जे. थामसन ने सबसे पहली बार परमाणुओं का विस्तृत मॉडल प्रस्तुत किया। उन्होंने परमाणुओं की परिकल्पना एक ऐसे गोले के रूप में की थी जिसमें बराबर संख्या में इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन इधर-उधर बिखरे हुए थे।

लार्ड रदरफोर्ड ने एक सोने की पतली पन्नी पर तीव्रगामी धनात्मक विद्युत आवेश युक्त एल्फा कणों (लैड धातु के बक्से में रखे किसी रेडिओधर्मी तत्व से प्राप्त) की बौछार की तो उन्होंने कई सर्वथा नूतन परिणाम प्राप्त किये। प्रयोग के दौरान उन्होंने देखा कि सोने की पन्नी से टकराने के बाद बहुत से एल्फा कण तो सीधी रेखा में उसको पार कर जाते हैं, कुछ अपने मार्ग से विचलित हो जाते हैं और कुछ तो पन्नी से टकराकर उसी दिशा में लौट जाते हैं (चित्र–1)।

रदरफोर्ड ने इस प्रयोग से निष्कर्ष निकाला कि एल्फा कण (धनात्मक विद्युत आवेश युक्त कण) तभी वापस लौट सकते हैं जबकि समान आवेश वाले किसी पिण्ड से टकराएं। इस प्रयोग के आधार पर रदरफोर्ड ने परमाणु संरचना का न्यूक्लीयर प्रतिरूप प्रस्तुत किया।

रदरफोर्ड ने निष्कर्ष निकाला कि परमाणु के आयतन का अधिकांश भाग रिक्त रहता है, और इसी नाते अधिकांश एल्फा कण सीधे बाहर निकल जाते हैं। परमाणु के भीतर एक अति सूक्ष्म और धनात्मक विद्युत आवेश होता है, जिससे टकराकर कुछ एल्फा कण उसी दिशा में वापस लौट जाते हैं और कुछ अपने मार्ग से विचलित हो जाते हैं। इस धन-आवेश युक्त पिण्ड को रदरफोर्ड ने नाभिक का नाम दिया।

रदरफोर्ड ने परमाणु संरचना का प्रतिरूप प्रस्तुत करते हुए कहा कि परमाणु में एक अति सूक्ष्म धन विद्युत आवेश युक्त नाभिक होता है। नाभिक का

धनात्मक आवेश उसके सभी प्रोटानों के कारण होता है जो नाभिक के चारों ओर चक्कर लगा रहे ऋणात्मक विद्युत आवेशयुक्त कणों यानी इलेक्ट्रानों के कारण संतुलित रहता है और इस प्रकार परमाणु उदासीन होता है।

रदरफोर्ड के मॉडल में सुधार

परमाणु संरचना के उक्त मॉडल में कुछ कमियां थीं। मैक्सवेल के विद्युत गतिकी के मूलभूत सिद्धांत के अनुसार गतिशील विद्युत आवेशित कण से निरंतर ऊर्जा विकिरित (विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में) होती है।

रदरफोर्ड ने जो प्रतिरूप प्रस्तुत किया था, उस पर विचार करने से प्रतीत होता है कि नाभिक के चारों ओर चक्कर काटते हुए इलेक्ट्रॉन कण विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के रूप में ऊर्जा विकिरित करते हैं और ऊर्जा में कमी आते रहने के कारण इलेक्ट्रॉन की गति भी कम होती जाती है तथा एक स्थिति तो ऐसी भी आ सकती है कि क्रमशः उसकी त्रिज्या छोटी होती जाएगी और अंततः वह नाभिक में गिर पड़ेगा। निःसंदेह उक्त परमाणु मॉडल ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि परमाणु एक स्थायी निकाय है।

इसका समाधान प्रस्तुत किया वैज्ञानिक नील्स बोर (1913) ने। उन्होंने बताया कि इलेक्ट्रॉन, नाभिक के चारों ओर बन्द कक्षाओं में चक्कर काटते हैं। किसी विशिष्ट कक्षा में घूमते समय इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा का क्षय नहीं होता और वे नाभिक में नहीं गिरते हैं। वस्तुतः जब कोई इलेक्ट्रॉन एक कक्षा से दूसरी कक्षा में स्थानांतरित होता है तब उसकी ऊर्जा में ह्रास अथवा वृद्धि होती है। केन्द्र से बाहर की ओर आरम्भ करके क्रमशः इन्हें 1, 2, 3, 4 संख्याओं में अथवा K, L, M, N.... अक्षरों से प्रदर्शित करते हैं।

वैज्ञानिक सोमर फेल्ड (1915) ने कुछ और नये विचारों का समावेश किया। उन्होंने कहा कि बोर की इलेक्ट्रॉन कक्षाओं में कुछ वृत्ताकार और कुछ दीर्घ-वृत्ताकार होती हैं। पहली कक्षा को छोड़कर अन्य कक्षाओं में 2 से 4 तक उपकक्षाएं भी हो सकती हैं जिन्हें क्रमशः s, p, d, f अक्षरों (s=Sharp, p=Principal, d=Diffuse, f=Fundamental) से प्रदर्शित करते हैं। उपकक्षा या कक्षक s में 2, p में 6, d में 10 तथा f में 14 इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं। (चित्र-2)।

परमाणु संरचना का आधुनिक विचार

नील्स बोर ने 'परमाणु मॉडल' की परिकल्पना करते हुए बताया था कि इलेक्ट्रॉन नियमित बंद कक्षाओं में चक्कर लगाते रहते हैं। यह धारणा आधुनिक मापदंडों से मेल नहीं खाती।

आधुनिक विचारों के अनुसार कक्षा एक निश्चित रेखा नहीं है, अपितु नाभिक के चारों ओर का वह क्षेत्र है, जहां इलेक्ट्रॉन तेजी से गति करते रहते हैं। इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर ऐसी तेज गति से घूमते हैं कि कभी वे नाभिक के पास आ जाते हैं तो कभी उससे दूर चले जाते हैं। ये वृत्ताकार कक्षाओं में नहीं घूमते। इलेक्ट्रॉन तेजी से नाभिक की ओर तथा इससे दूर हर संभव दिशा में घूमते हुए परमाणु को एक गोलीय आकार प्रदान करते हैं। इलेक्ट्रॉन की गति अधिक होने के कारण नाभिक के चारों ओर ऋणात्मक विद्युत आवेश युक्त एक बादल प्रतीत होता है, इसे इलेक्ट्रॉन मेघ कहते हैं। यह इलेक्ट्रॉन मेघ भी इलेक्ट्रॉन के वास्तविक स्थान को प्रकट नहीं करता। यह केवल उस क्षेत्र को प्रकट करता है, जहां इलेक्ट्रॉन के पाये जाने की प्रायिकता सर्वाधिक होती है। जहां पर इलेक्ट्रॉन के उपस्थित होने की संभावना सबसे अधिक होती है, वहां पर ऋणात्मक विद्युत आवेश का बादल घना होता है।

आधुनिक विचार धारा के अनुसार इलेक्ट्रॉनों को नाभिक के चारों ओर गोलीय कोशों या कक्षाओं में व्यवस्थित माना जाता है। प्रत्येक कोश की अपनी निश्चित ऊर्जा होती है। इसी नाते इनको "ऊर्जा स्तर" भी कहते हैं। K से ले कर Q तक की विभिन्न कक्षाओं में इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम वितरण संख्या क्रमशः 2, 8, 18, 32, 18, 8 तक हो सकती है।

न्यूट्रॉन की खोज

बोथे और बेकर ने अपने एक प्रयोग के दौरान यह अनुभव किया कि जब तीव्र वेग वाले एल्फा कणों की बौछार बेरिलियम पर की जाती है तो एक नये प्रकार के विकिरण प्राप्त होते हैं। अंग्रेज वैज्ञानिक सर जेम्स चैडविक ने भी ऐसे प्रयोग किये और इन विकिरणों की प्रकृति का अध्ययन किया।

जेम्स चैडविक ने ज्ञात किया कि वे नये विकिरण वास्तव में एक नये प्रकार के कण हैं। इन कणों का द्रव्यमान प्रोटॉन के द्रव्यमान के लगभग बराबर (1.675×10^{-24} ग्राम) होता है और ये विद्युत उदासीन कण हैं। चैडविक ने इन कणों को न्यूट्रॉन (${}_0n^1$) नाम दिया। ${}_4Be^9 + {}_2He^4 \rightarrow {}_0n^1 + {}_6C^{12}$

लीथियम, बोरॉन आदि हल्के तत्वों पर भी एल्फा कणों की बौछार से न्यूट्रॉन प्राप्त होते हैं। प्रायः सभी तत्वों (हल्की ${}_1H^1$ हाइड्रोजन को छोड़कर) के परमाणुओं में न्यूट्रॉन होते हैं। इस तरह, यह स्थापना की गयी कि न्यूट्रॉन भी द्रव्य के मूल कण हैं।

नाभिकीय संगठन

न्यूट्रॉन की खोज के पश्चात् हाइजनबर्ग ने प्रस्तुत किया कि परमाणु का नाभिक प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से मिलकर बना होता है। चूंकि न्यूट्रॉन विद्युत उदासीन होते हैं, और प्रत्येक प्रोटॉन पर इकाई धनात्मक विद्युत आवेश होता है, अतः, नाभिक का धनात्मक विद्युत आवेश उसमें उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होता है, नाभिक के अंदर विद्यमान प्रोटॉनों की संख्या को परमाणु संख्या कहते हैं।

प्रोटॉन और न्यूट्रॉन का द्रव्यमान लगभग 1.6×10^{-24} होता है, पर इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान इनके मुकाबले नगण्य (1830 गुना कम) होता है। चूंकि प्रोटान और न्यूट्रॉन दोनों नाभिक के अंग है, अतः परमाणु का संपूर्ण द्रव्यमान नाभिक में ही सन्निहित होता है। इसी कारण, परमाणु-नाभिक काफी भारी होता है।

नाभिक में उपस्थित समस्त परमाणु-कणों को न्यूक्लिऑन कहते हैं। भिन्न-भिन्न परमाणुओं के नाभिक का द्रव्यमान तथा उन पर उपस्थित धन आवेशों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। परमाणु नाभिक का आकार अत्यन्त लघु होता है। नाभिक की त्रिज्या लगभग 10^{-12} सें. मी. और परमाणु की त्रिज्या लगभग 10^{-8} सें. मी. होती है। चूंकि परमाणु का लगभग समस्त द्रव्यमान बहुत ही कम आयतन के नाभिक में केंद्रित रहता है, अतः, परमाणु की अपेक्षा नाभिक काफी सघन और दृढ़ होता है। नाभिक का आयतन परमाणु के आयतन का लगभग 10^{-12} होता है और नाभिक का घनत्व परमाणु के घनत्व से लगभग 10^{12} गुना अधिक होता है।

* * *

निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय लेखक कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें:–

- **लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये।**
- **लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य।**
- **कृपया अनुवादित लेख न भेजें।**
- **लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में पर्याप्त हाशिये दोनों ओर छोड़कर कागज के एक ओर ही लिखें।**
- **विषयवस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो कृपया उन्हें सफेद कागज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें; पाण्डुलिपि में मूलपाठ के साथ उसी पृष्ठ पर चित्र न बनायें।**
- **लेख संबंधी पत्र-व्यवहार में अन्य बातें, जैसे कि, क्या मेरा वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है? आदि सम्मिलित न करें। इससे पत्रोत्तर में विलम्ब की सम्भावना बढ़ जाती है।**

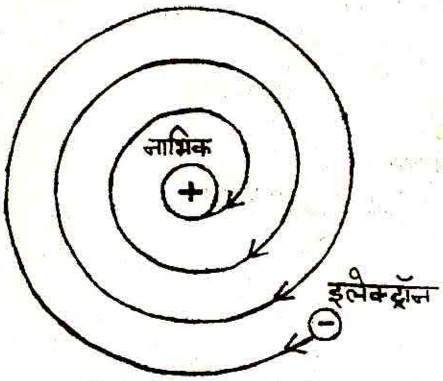

रदरफोर्ड के मॉडल में दोष

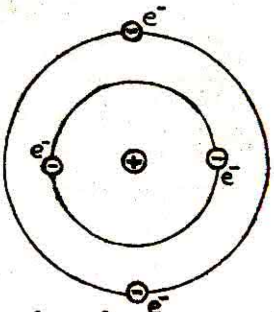

नील्स बोर का परमाणु मॉडल

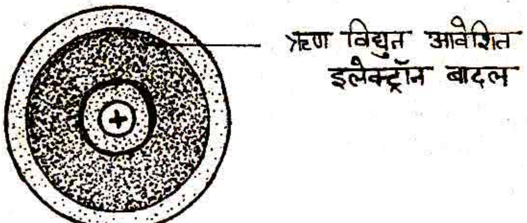

कक्षा का आधुनिक रूप

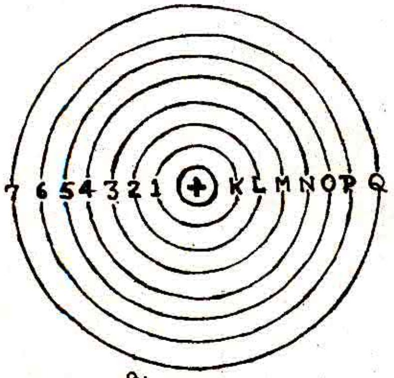

कक्षाओं का नामकरण

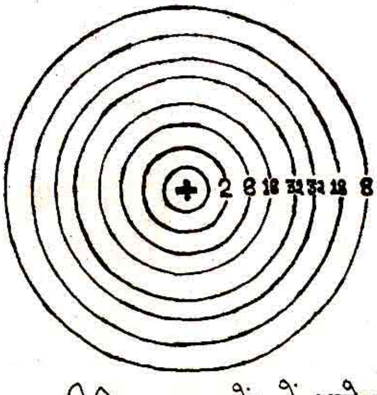

विभिन्न कक्षाओं में इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या

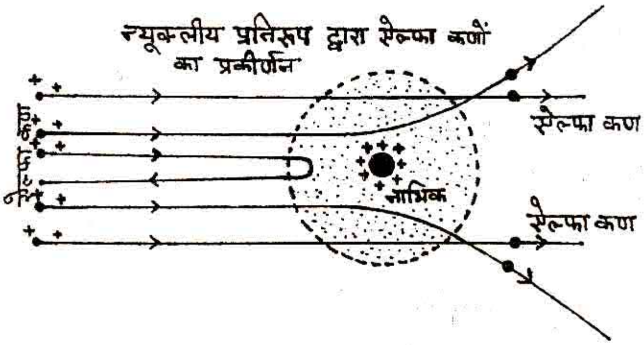

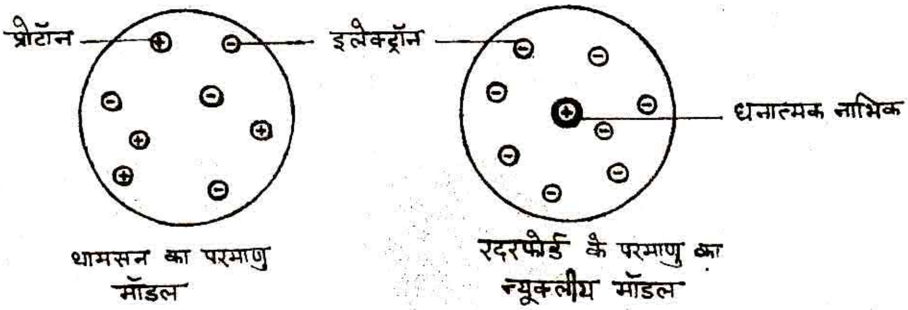

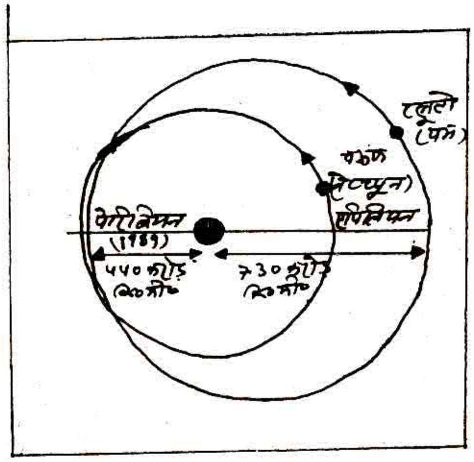

चित्र-1. नेप्च्यून ग्रह की कक्षा

द्रव्य और विकिरण

जगदीश मोहन रावत
अध्यापक, भौतिकी, केन्द्रीय विद्यालय, भरतपुर–321001.

प्रकृति के नियमों की खोज विज्ञान का उद्देश्य है। जब तक सत्य का पता नहीं चल जाता, खोज की प्रक्रिया चलती रहती है। प्रकाश से हम अपने चारों ओर का संसार देखते हैं। रेडियो तरंगों से एक्स किरणों, गामा किरणों तक फैले विशाल विद्युच्चुम्बकीय वर्णक्रम में हमारा प्रकाश बहुत छोटा-सा अंश है। पिछले दो-ढाई सौ वर्षों में प्रकाश की प्रकृति से संबंधित अनेक धारणाएं बनीं, बिगड़ीं और फिर से बनीं। सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार संपूर्ण विद्युच्चुम्बकीय विकिरण की ऊर्जा और पदार्थ का द्रव्यमान एक ही वस्तु के दो रूप हैं। इस लंबी कहानी में एक और तथ्य जुड़ गया है। पदार्थ कभी तरंग और कभी द्रव्यमान के लक्षण प्रदर्शित करता है, यद्यपि यह तरंग विद्युच्चुम्बकीय विकिरण की तरंग से भिन्न प्रकार की होती है। इसका रोचक वर्णन प्रस्तुत है।

आदि काल से ही मनुष्य प्रकाश की प्रकृति के विषय में जिज्ञासु रहा है। विभिन्न दार्शनिकों ने समय-समय पर इसकी प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए अपनी-अपनी कल्पनाएं प्रस्तुत कीं। इस क्रम में प्रथम वज्ञानिक परिकल्पना सर आइजक न्यूटन ने सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार प्रकाश अत्यन्त सूक्ष्म कणिकाओं से बना होता है। ये कणिकाएं प्रकाश स्रोत से उत्सर्जित होकर वस्तुओं से टकराती हैं तथा गति की दिशा बदल कर मनुष्य के नेत्र पर संवेदना उत्पन्न करती हैं, जिससे वस्तुएं दिखलाई पड़ती हैं। किसी भी सिद्धान्त की सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस सीमा तक प्रायोगिक तथ्यों की व्याख्या करने में समर्थ है। न्यूटन ने प्रकाश की अनेक घटनाओं जैसे परावर्तन, अपवर्तन वर्ण–विक्षेपण तथा सरल रेखीय गमन आदि की व्याख्या कणिका सिद्धान्त द्वारा सफलतापूर्वक की। लेकिन कुछ प्राकृतिक घटनाएं जैसे व्यतिकरण, विवर्तन एवं ध्रुवण आदि को समझाने में न्यूटन का कणिका सिद्धान्त असफल सिद्ध हुआ। इन नवीन प्राकृतिक घटनाओं को समझाने के उद्देश्य से वर्ष 1679 में हाइगन ने प्रकाश का तरंग सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश किसी भी स्रोत से उत्सर्जित होकर एक काल्पनिक माध्यम ईथर में तरंगों के रूप में गमन करता है।

न्यूनाधिक संशोधन के साथ कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने भी जैसे यंग, फ्रैजनल एवं मैक्सवेल, इस तरंग सिद्धांत का समर्थन किया। इस सिद्धान्त के द्वारा न केवल

परावर्तन, अपवर्तन, सरल रेखीय गमन एवं वर्ण-विक्षेपण की घटनाओं को समझाया जा सका बल्कि व्यतिकरण विवर्तन एवं ध्रुवण की भी सफल व्याख्या की जा सकी। इस प्रकार, हाइगन का तरंग सिद्धान्त वैज्ञानिक क्षेत्र में पूरी तरह स्थापित हो गया।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम काल में एक नई प्राकृतिक घटना की खोज हुई जिसे प्रकाश-विद्युत प्रभाव के नाम से जाना गया। प्रयोगों द्वारा देखा गया कि जब निम्न तरंगदैर्ध्य का प्रकाश किसी धात्विक सतह पर आपतित होता है तो सतह से इलैक्ट्रान उत्सर्जित होने लगते हैं। इस घटना से वैज्ञानिक मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। प्रकाश-विद्युत प्रभाव के प्रायोगिक परिणामों की व्याख्या करने में हाइगन का तरंग सिद्धान्त असफल सिद्ध हुआ। इस युग का वैज्ञानिक, धारणाओं एवं मान्यताओं के परिवर्तन की सन्धि पर खड़ा था। क्लासिकल एवं क्वान्टम सिद्धांतों के मध्य अन्तर्द्वन्द की स्थिति बन गयी थी। अनिश्चय के इस वातावरण को आइन्स्टीन ने दूर किया। उन्होंने प्रकाश-विद्युत प्रभाव की क्वान्टम सिद्धांत से सन्तोषप्रद व्याख्या की और इस प्रकार, क्वान्टम सिद्धान्त को वैज्ञानिक मान्यता प्राप्त हो गयी। इसी सिद्धान्त ने विकिरण की द्वैत प्रकृति की धारणा को जन्म दिया।

क्वान्टम सिद्धान्त के आधार पर प्रकाश की सभी प्राकृतिक घटनाओं को समझाया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश का मात्रक उसका क्वान्टा अथवा फोटॉन होता है। प्रत्येक फोटॉन की ऊर्जा निश्चित होती है। फोटॉन द्वैत प्रकृति का घटक है। व्यतिकरण, विवर्तन एवं ध्रुवण की प्रक्रिया में इसका व्यवहार तरंग के जैसा होता है तथा प्रकाश-विद्युत एवं कॉम्प्टन प्रभाव के प्रदर्शन में इसकी प्रकृति कण स्वरूप होती है।

वर्ष 1924 में फ्रांस के 32 वर्षीय वैज्ञानिक लुईस द ब्रोगली ने पेरिस विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के सम्मुख पदार्थ तरंगों का नवीनतम सिद्धान्त रखा, जिसके अनुसार पदार्थ तरंगों के रूप में भी व्यवहार करता है। यह सिद्धान्त बर्तमान वैज्ञानिक उपलब्धियों के क्रम में प्रथम सोपान है। इस सिद्धान्त को वैज्ञानिक मान्यता मिलने के उपरान्त, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक चिन्तन के नये आयाम उपस्थित हो गये। समस्त ब्रह्मांड ऊर्जामय है। असीम ब्रह्मांड में अनन्ततः फैला हुआ द्रव्य निरंतर ऊर्जा में परिवर्तित होता रहता है। द्रव्य एवं ऊर्जा ब्रह्मांड के एक ही घटक के दो स्वरूप हैं। इन दोनों में से किसी को भी न तो उत्पन्न ही किया जा सकता है और न ही नष्ट। केवल इनके प्राकृतिक स्वरूप में परिवर्तन किया जा सकता है।

द ब्रोगली ने अपने सिद्धान्त को एक समीकरण द्वारा प्रस्तुत किया जिसे अन्य तात्कालिक सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित किया जा सकता है। किसी भी फोटॉन की ऊर्जा संबंधित विकिरण की आवृत्ति पर निर्भर करती है। एक फोटॉन की ऊर्जा $E=hv$ द्वारा व्यक्त की जा सकती है, जहां पर v विकिरण की आवृत्ति है तथा h प्लांक का स्थिरांक है जिसका मान 6.63×10^{-34} मी.कि.से. मात्रक होता है। आइन्स्टीन ने द्रव्यमान के कण से सम्बद्ध ऊर्जा के लिए $E=mc^2$ सम्बन्ध स्थापित किया जहां c प्रकाश का वेग है। अतः फोटॉन के लिए

$$E=hv=mc^2$$

यदि फोटॉन के सम्वेग को P से प्रदर्शित किया जाय तो

$$P=mc=h\frac{v}{c}$$

अथवा $P = \frac{h}{\lambda}$ जहां λ संगत विकिरण की तरंग दैर्ध्य है। इस संबंध में λ से प्रदर्शित संवेग फोटॉन की कण-प्रकृति का परिचायक है तथा λ से प्रदर्शित तरंग दैर्ध्य उसकी तरंग प्रकृति का साक्षी है। द ब्रोगली ने दिखाया कि इस सम्बन्ध की प्रामाणिकता केवल फोटॉन के लिए ही सीमित नहीं है, बल्कि पदार्थ तरंगें भी इसी समीकरण से प्रदर्शित होती हैं। इस के व्यापक स्वरूप से स्पष्ट है कि द्रव्यमान से सम्बद्ध तरंग का तरंग-दैर्ध्य द्रव्यमान के विलोमानुपाती होता है। अतः,

वस्तु का द्रव्यमान जितना अधिक होगा उससे सम्बद्ध तरंग की तरंग-दैर्घ्य उतनी ही कम होगी। इसी प्रकार, वस्तु का वेग भी जितना अधिक होगा, सम्बद्ध तरंग का तरंग-दैर्घ्य उतना ही कम होगा। उदाहरण स्वरूप, क्रिकेट की गेंद से सम्बद्ध तरंग का तरंग-दैर्घ्य परमाणु के नाभिक के आकार से 10^{-20} गुना सूक्ष्म होता है। यह राशि इतनी कम है कि तरंग प्रकृति के गुणों का प्रदर्शन लगभग असम्भव है।

द्रव्यमान तरंगों संबंधी द ब्रोगली के संबंध को प्रायोगिक रूप से सत्यापित करने का प्रथम प्रयोग दो अमेरिकी वैज्ञानिकों, डेवीसन तथा जर्मर ने वर्ष 1927 में किया। उन्होंने विवर्तन प्रक्रिया द्वारा मन्द इलैक्ट्रानों से सम्बद्ध द ब्रोगली तरंग-दैर्घ्य मापने में सफलता प्राप्त की। एक तप्त तन्तु से उत्सर्जित इलैक्ट्रानों को निम्न विभवान्तर से त्वरित करके निकिल के क्रिस्टल पर आपतित किया गया तथा विभिन्न कोणों पर प्रकीर्णन की तीव्रता का अनुमापन किया गया। इलैक्ट्रॉनों से सम्बद्ध द ब्रोगली तरंग-दैर्घ्य एक्स-किरणों के परास में होती है। डेवीसन तथा जर्मर द्वारा अनुमानित तरंग-दैर्घ्य द ब्रोगली के सूत्र द्वारा गणना से प्राप्त तरंग-दैर्घ्य के बराबर प्राप्त हुई। अतः, द्रव्य तरंगों की अभिधारणा की पुष्टि करने में यह प्रयोग सफल रहा।

द्रव्य तरंगों की द ब्रोगली अभिधारणा की पुष्टि के क्रम में जी. पी. टामसन द्वारा वर्ष 1928 में सम्पादित इलैक्ट्रॉन विवर्तन का प्रयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह प्रयोग क्रिस्टलों पर लवे द्वारा एक्स किरणों के विवर्तन प्रयोग के समकक्ष है। तप्त तन्तु से उत्सर्जित इलैक्ट्रॉन किरणों को 50000 वोल्ट के उच्च विभवातंर से त्वरित किया गया था। इसको सूक्ष्म छिद्र से गुजार कर प्राप्त बारीक किरण को स्वर्ण पत्र से गुजारा गया। निर्गत इलैक्ट्रॉन किरण को फोटोग्राफिक प्लेट पर आपतित कर उसका चित्र प्राप्त किया गया। इस प्रयोग में प्राप्त चित्र संकेन्द्रीय वलयों को प्रदर्शित करता है जो स्पष्टतः तरंगों के विवर्तन द्वारा प्राप्त होता है।

इलैक्ट्रानों का द्रव्यमान अत्यधिक सूक्ष्म होने के कारण इन द्रव्यमान कणों से सम्बद्ध तरंगों का प्रदर्शन सम्भव हो सका है। नवीनतम प्रयोगों द्वारा जोन्सन ईलट तथा ओल्सन ने प्रमाणित किया है कि हाइड्रोजन तथा अन्य हल्के परमाणु क्रिस्टलों द्वारा ठीक उसी प्रकार परावर्तित होते हैं जैसे कि एक्स किरणें।

इस प्रकार सैद्धांतिक रूप से तथा प्रायोगिक परीक्षणों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि द्रव्य तथा विकिरण एक ही ब्रह्मांण्डीय तत्व के दो स्वरूप है जो परस्पर रूपान्तरित होते रहते हैं और इस अक्षय ब्रह्माण्ड की आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहते हैं।

* * *

प्रश्नोत्तरी

विज्ञान अथवा प्रौद्योगिकी से संबंधित आपका यदि कोई तर्क संगत प्रश्न हो तो कृपया हमें लिख भेजिए। हम उसे छाप देंगे, ताकि पाठकों में से यदि कोई उत्तर देना चाहे तो दे सके। हम उत्तर को भी "वैज्ञानिक" में छाप देंगे।

"वैज्ञानिक" के एजेंटों से निवेदन

"वैज्ञानिक" अध्ययन हेतु पत्रिका है; इसमें केवल पढ़ने के लिए सामग्री नहीं के बराबर होती है। अतः, एजेन्टों से निवेदन है कि अपनी आवश्यकतानुसार ही इसकी प्रतियाँ मंगाएं। "वैज्ञानिक" की सामग्री कभी पुरानी नहीं होती है, अतः बिकी हुई प्रतियों को वापस लेने की कोई व्यवस्था नहीं है।

—संपादक

चर्चा-ए-आम

-डॉ. राज किशोर

नई शिक्षा केन्द्र, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद ।

भारत में आम का फल बड़े चाव से खाया जाता है, परन्तु इसके इतिहास की जानकारी बहुत कम लोगों को है। प्रस्तुत है इसका रोचक इतिहास और इसके औषधीय गुण।

भारत में पैदा होने वाले विभिन्न फलों में आम बहुत प्रसिद्ध है और इसे फलों का राजा कहा जाता है। आम भारत वर्ष की एवं विशेषकर उत्तर प्रदेश की एक प्रमुख उपज है। आम-उत्पादक देशों में भारतवर्ष का स्थान प्रमुख है और भारत में आम-उत्पादन में उत्तर प्रदेश का स्थान प्रमुख है। उत्तर प्रदेश में लगभग 4 लाख 93 हजार हैक्टेयर भूमि में आम की बागवानी की जाती है जिससे लगभग 35 लाख 35 हजार टन आम का उत्पादन होता है। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त भारत के अन्य आम-उत्पादक राज्य बिहार, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र हैं। भारत वासियों का प्रिय फल होने के साथ ही अब इसके स्वाद के चर्चे विदेशों में भी होने लगे हैं। आम के फल एवं उनसे निर्मित विविध सुस्वाद पदार्थ कई देशों यथा, अफगानितान, बेहरीन, फ्रांस, कुवैत, मलेशिया, कतार, सिंगापुर, इग्लैण्ड एवं अमेरिका को निर्यात किये जाते हैं। देशसे विदेशों को निर्यात किये जाने वाले आम एवं आम से बने पदार्थों के कुल भाग का लगभग 1,200 टन केवल गल्फ देशों में ही जाता है। इस प्रकार, आम के विश्व बाजार के कुल उत्पादन, लगभग 15,000 टन में से लगभग 11,000 टन उत्पादन का सहयोग भारतवर्ष देता है। इस प्रकार, आम प्रतिवर्ष देश के लिए कई करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा कमा लाता है।

भारतीय संस्कृति से आम का रिश्ता बहुत पुराना माना गया है लेकिन वैज्ञानिकों ने भारत एवं भारतीय संस्कृति से आम का रिश्ता लगभग 6 हजार वर्ष पुराना माना है। पुराणों में आम को स्वर्ग लोक का एक विशिष्ट फल माना गया है और पृथ्वी पर इसके आने के विषय में कुछ पौराणिक कथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि राजा जनक ने इन्द्रपुरी से आम का पेड़ मंगाकर भगवान श्रीराम को उपहार स्वरूप दिया था। इसी प्रकार, भगवान श्रीराम का श्रृंगारिक उनके शरीर में प्रयुक्त केसर और चंदन माली को दे दिया करता था जिसे माली प्रसाद समझकर कुछ तो स्वयं ग्रहण करता था और शेष को घोलकर उसी आम के वृक्ष को सींच दिया करता था जिसके कारण उस आमवृक्ष पर लगने वाले फलों में वही रूप-रंग एवं सुगंध उत्पन्न हो गयी।

कहा जाता है कि बौद्ध काल में एक आम वृक्ष की रखवाली के लिए किसी राजा ने एक सौ सैनिक नियुक्त कर रखे थे और इस वृक्ष को प्रतिदिन गाय के कच्चे दूध, शहद और सुगंधित रसों से सींचा जाता था। इसके साथ ही, प्रति दिन प्रातः एवं सायंकाल संगीत की मधुर धुनों, सहस्रों दीपों के आलोक से धुंघरुओं की झंकार के साथ इस आम के पेड़ की पूजा की जाती थी।

आम की विशेषताओं का उल्लेख "कुमार संभव" में विशेष रूप से किया गया है। मुगलों के शासनकाल में आम का बहुत महत्व था।

आम के प्रति मुगलों के कई किस्से मशहूर हैं। अवध के नवाब आसिफद्दौला का एक कुर्कीनामा जो शाही कुर्कीनामा के नाम से जाना जाता है, बहुत मशहूर था। इस शाही कुर्कीनामा के द्वारा मलिहाबाद के अल्लूपुर के एक जमींदार के आम के पेड़ को कुर्क कर लिया गया था और इस पेड़ के प्रत्येक फल का मूल्य एक अशर्फी नियत किया गया था। आगे चलकर आम का स्वाद अवध के नवाबों को इस कदर भा गया कि अच्छे आम के सभी पेड़ों को कुर्क कर लिया गया था। ऐसा कहा जाता है कि हल्दी घाटी की लड़ाई में रसद की कमी पड़ जाने पर सैनिकों ने आम खाकर अपनी भूख मिटायी थी।

1875 तक आमों का जो रूप मिलता है वह तुख्मी या बीजू आम का है। इस अवधि तक आम चूस कर खाया जाता था। लाहौर में जहाँगीर द्वारा "शालीमार बाग" इन्हीं तुख्मी आमों से लगवाया गया था। आम की कलम बांधने का जिक्र सर्वप्रथम लगभग 1880 के आसपास मिलता है। जब अवध के नवाबों द्वारा लाजवाब स्वाद वाला "धरती धमक" नामक आम का पेड़ कुर्क कर लिया गया तो इस पेड़ से सदा के लिए वंचित हो जाने के डर से पेड़ मालिक ने चोरी से इस पेड़ की डाल काट कर दूसरे बीजू आम पर बांधकर "धरती धमक" का नया पेड़ "मिश्रीकंद" के नाम से तैयार किया। इस प्रकार, कलम बांधने से इस विधि के ज्ञात होते ही वर्ष 1857 में गदर की भांति मलिहाबाद के शौकीन जमींदारों, ताल्लुकेदारों ने युद्ध स्तर पर अच्छे फलों की खोज प्रारम्भ कर दी, जिनसे कलम बांधने का कार्य व्यापारिक स्तर पर प्रारम्भ हो गया।

आम की अभी की किस्मों में "दशहरी" आम की विशेष धूम रहती है। दशहरी आम का भी अपना एक इतिहास है। लखनऊ के काकोरी जिले के दशहरी गाँव में एक बीजू आम का पेड़ लगाया गया जिसका फल लम्बा, बगैर रेशेदार तथा पकने पर सुनहरा एवं अत्यंत ही स्वादिष्ट था। इस गाँव के ताल्लुकेदार ने इस आम को उपहार स्वरूप लखनऊ के नवाबों को भेजा और नवाबों द्वारा अन्तत: इस पेड़ को भी कुर्क कर लिया गया जिसके कारण इस पेड़ की भी दो कलमें चोरी से काटकर अन्य बीजू पौधों पर बांधी गयीं जिसमें से एक पेड़ को जोश मलीहाबादी के अब्बाजान जनाब बशीर अहमद मलीहाबाद ले आये। इस प्रकार दशहरी गाँव के नाम पर आम की इस किस्म का नाम दशहरी पड़ा। इसी प्रकार, आम की चौसा किस्म का नाम संडीला के चौसा गाँव के नाम पर पड़ा। इसके बारे में कहा जाता है कि चौसा गांव में एक बेसहारा विधवा के आँगन में किसी पंछी ने एक आम की गुठली गिरा दी जिसे उस स्त्री ने बो दिया जो कालांतर में इतने स्वादिष्ट किस्म के आम का जनक हुआ कि नवाब रसूल के पूर्वज हर फसल में इस पेड़ को सौ रुपये में खरीद लिया करते थे। मलाया और बर्मा में आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व यदि किसी के पास आम का वृक्ष होता था तो वह बौर आने पर जश्न मनाता था। इस पेड़ का विधिपूर्वक बेला या चमेली के पेड़ से विवाह कराया जाता था। रात भर नाच-गान का दौर चलता था और अगले दिन सबेरे अविवाहित कन्याओं को इस आम के पेड़ की एक एक पत्ती खाने के लिए दी जाती थी जिसके पीछे मान्यता थी कि विवाहोपरान्त उनका भी आंगन आम के वृक्ष जैसा बाल-बच्चों से भरा रहे। सेलीबीज में आज भी घर से विदा होते समय कन्या की गोद में पीले मखमल के कपड़े में आम की गुठली लपेट कर डाल दी जाती है ताकि उसकी गोद भी आम के वृक्ष जैसी फले-फूले।

पहले आमों का व्यापार करना पाप समझा जाता था। उत्पादित आम गरीबों–अमीरों में बांट कर खाया जाता था और इसे उपहारस्वरूप लोगों को खाने के लिए भेजा जाता था। आमों के व्यापार करने का सर्वप्रथम प्रमाण "अवध राज्य" में मिलता है जो कि 19वीं शताब्दी के आरंभ में शुरू हुआ था।

वर्तमान समय में भारत में आम की लगभग एक हजार किस्में पायी जाती हैं जिनमें से लगभग 20 किस्मों को व्यापारिक स्तर पर उगाया जाता है। व्यापारिक स्तर पर उगायी जाने वाली किस्मों में अलफांसो, बैंगलोरा, बंगनपल्ली, बम्बई, बम्बई हरा, दशहरी, फजली, चौसा, हिमसागर, केसर, किशनभोग, लंगड़ा, मनकुर्द, मुलगोवा, नीलम, समर-बहिस्त, सुवर्ण रेखा, बनराज, जर्दालु, आम्रपाली एवं मल्लिका प्रमुख हैं।

उपयोगिता :

आम एक ऐसा फल है जिसका कच्चे एवं पके दोनों अवस्थाओं में भरपूर उपभोग किया जाता है। आम के पके हुए फलों को उनके स्वाद, सुगंध एवं पौष्टिकता के कारण फल न कह कर शहद के मुहरबन्द गिलास कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। आम पूर्ण आहार के तत्वों से सम्पन्न होने के साथ पौष्टिक, पाचक एवं मृदुरेचक रूप में हमारी शारीरिक व्याधियों को नष्ट करने में अद्वितीय है। आम के फल में विटामीन "ए", "बी", "सी" खनिज प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

आयुर्वेद में आम के मौर (पुष्प क्रम), कच्ची अंबिया, कच्चे आम एवं पके हुए आम के गुण-दोषों का वर्णन इस प्रकार किया गया है :-

"आम्रपुष्प शीतलस्याद्वातलं ग्राहकंमतम्।
अग्नि दीप्ति कर रुच्य कफपित प्रमेहनुत्॥
प्रदरं चाति सारचनाशये दितिमेमतम्।

(निघण्टु रत्नाकर)

अर्थात् आम का मौर-शीतल, वातकारक, मलरोधकर, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा कफ, पित्त, प्रमेह, प्रदर और अतिसार निवारक है।

बालाभ्रस्तुवर चोष्ठाःसुगन्धि चाम्लकः स्मृतः।
क्षारस्ययोगादुचिदोग्राही-रुक्ष धकान्तिदः॥
वित्तवातकफान्नक्त दोषा चैवकरोतिसः।
कण्ठरुग्वात मेहचयोनिक्षषव्रणतथा॥
अतिसार प्रमेह च नाशयेदिति कीर्तितः।

(नि०र०)

अर्थात्, कच्ची अँबिया-कषेली, गरम, सुगन्धि, खट्टी, किसी क्षार के साथ होने से रुचिकारी, मलरोधक, रुखी और कान्ति, पित्त, वात, कफ और रुधिर के दोषों को उत्पन्न करने वाली और कण्ठ रोग, वात, प्रमेह, योनिदोष, व्रण, अतिसार को हरने वाली है।

पक्कतुष मधुरंवृष्यस्निग्धबल सुख प्रदम्।
गुरुवात हरं टद्यवर्णय-शीतम पित्तलम्॥
कषाया नुरसंवहिन लेप्भशुक्रविर्द्धनम्।

(भाव प्रकाश)

अर्थात् पका हुआ आम मधुर, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, बलवर्धक, सुखदायक, भारी, वातविनाशक, हृदय को हितकारी, वर्ण को सुन्दर करने वाला, शीतल, पित्त नहीं करने वाला, किंचित कषेला तथा अग्नि, कफ और शुक्रवर्धक है।

इसके अतिरिक्त, आम्रावर्त (ऑबट), तृषा, वमन और वातपित्तनिवारक है तथा कुछ दस्तावर एवं रुचिकारक है। मधुयुक्त आम-क्षय, प्लीहा, वात और श्लेष्म नाशक है। घृतयुक्त आम-वातपित्त नाशक, दीपन, बलवर्धक और वर्णकारक है। दुग्धयुक्त आम-वातपित्तहारक, रुचिकारक, बलवर्धक, स्वादिष्ट भारी और शीतल है। आम की गुठली–मधुर, किंचित अम्ल, कषैली तथा वमन, अतिसार और हृदय की दाह को दूर करने वाली है। गुठली का तेल–कषेला, स्वादिष्ट, रुखा, कड़वा, सुगन्धि तथा मुखरोग, कफ और वातनाशक है। आम की छाल-कषेली, मलरोधक, दाहकारक तथा पित्त, प्रमेह, कफ नाशक है। आम की जड़-कषेली, सुगन्धित, रुचिकारक, मलरोधक और शीतल है। आम के कोमल पत्ते-कषेले, मलरोधक, रुचिकारक तथा वात पित्त और कफ को हरने वाले हैं।

इन उपरोक्त गुणों के साथ-साथ आम के पेड़ वायु एवं धूल प्रदूषण की मात्रा को आँकने में भी बहुत उपयोगी पाये गये हैं। इन्स्टिटयूट ऑफ साइंसेस, बम्बई के डा. एस. बी. चाफेकर ने बम्बई में "औद्योगिक वायु प्रदूषणकारी तत्वों का पौधों पर प्रभाव" विषय पर किये गये शोध कार्यों में आम की पत्तियों की सहायता से बम्बई में वायु प्रदूषण के वितरण का एक मानचित्र बनाने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। * * *

ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान की शिक्षा के प्रति अरुचि

—आनन्द् प्रकाश ढींगरा

प्रवक्ता, रसायन विभाग, राजकीय महाविद्यालय, झज्जर (रोहतक), हरियाणा–124104.

ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान की शिक्षा की अपनी समस्याएं हैं, जिनकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। इन समस्याओं का विचारोत्तेजक वर्णन और उनका समाधान प्रस्तुत है। समस्या यदि पहचान ली जाए तो उसका निराकरण भी संभव हो जाता है। क्या सम्बन्धित अधिकारीगण इस ओर ध्यान देंगे?

सर्दियों में गिलास में चाय डालने पर उसका टूटना, बस के चलने पर सवारियों को पीछे की ओर झटका लगना, बरसात के दिनों में कपड़ों का देर से सूखना, नाव व जहाज़ का पानी पर तैरना, सुई का डूबना आदि कई ऐसे अनुभव हैं जिनसे हम नित्य प्रति सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार बिजली की उत्पत्ति, इससे पंखे का चलना, बिजली से हीटर और फ्रिज दोनों का एक समान चलना, रेडियो से क्रिकेट का सीधे ही आंखों देखे हाल का प्रसारण, दूरदर्शन पर अपने मनपसंद मैच का सीधा प्रसारण आदि देखकर इनके सिद्धांतों की जानकारी की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। जब बच्चे इनसे सम्बन्धित 'क्या, क्यों और कैसे' प्रश्न पूँछते हैं तो हममें से कितने लोग उन्हें संतुष्ट कर पाते हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर विज्ञान के गर्भ में निहित हैं। यदि हम विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं तो उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं। परन्तु क्या सभी वयस्क विज्ञान के ज्ञाता हैं? नहीं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ साक्षरता की दर 30 प्रतिशत से भी कम है, विज्ञान पढ़े लिखे व्यक्तियों की संख्या नगण्य है।

अध्यापकों की उदासीनता

अधिकांश स्कूल जाने वाले बच्चों को अपने अध्यापकों पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि अध्यापक रुचि लेकर उनकी कठिनाइयों को समझते हैं, उनकी जिज्ञासा को शांत करते हैं एवं उन्हें प्रोत्साहित करते हैं तो छात्रों में विज्ञान की शिक्षा में रुचि बनी रहती है। यदि ऐसा न हो तो क्या स्थिति होती है, इसे समझाने के लिए मैं अपना एक कटु अनुभव उदाहरणस्वरूप आपको बताता हूँ। मेरे मित्र शर्मा जी अपने विद्यार्थी जीवन में बहुत ही योग्य व मेधावी छात्र रहे हैं। दसवीं कक्षा तक की शिक्षा इन्होंने अपने गांव के विद्यालय से ही प्राप्त की। नवीं कक्षा में विज्ञान की कक्षा में आपने अध्यापक से पूछा, "जहाज पानी में तैरता है परन्तु सुई डूब जाती है, ऐसा क्यों?" अध्यापक का उत्तर था, "मूर्ख, सुई में छेद होता है, यदि जहाज़ में छेद कर दिया जाये तो क्या वह नहीं डूब जाएगा?"

बिल्ली की खाल पर आबनूस की छड़ को यदि रगड़ा जाये तो उसमें विद्युत आवेश उत्पन्न हो जाता है और इसे विद्युतदर्शी द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। जब ये अध्यापक महोदय, तीन बार इस प्रयोग को करने में असमर्थ रहे तो उनका कहना था, "पता नहीं कब की मरी हुई बिल्ली की खाल है?" इसमें अब तक बिजली कहाँ बची है?" इस प्रकार के कटु अनुभवों के फलस्वरूप शर्माजी ने विज्ञान विषय छोड़ दिये। वही शर्माजी बी. ए. में पंजाब विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान पर एवं एम. ए. (गणित) में स्वर्णपदक विजेता रहे। इस प्रकार के उदाहरण देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आपको

प्रायः मिलेंगे। विज्ञान के प्रति बच्चों में अरुचि अध्यापक के उदासीन व्यवहार के कारण हो सकती है। अध्यापक का ऐसा व्यवहार कई बार इस कारण भी होता है कि उसने यह व्यवसाय प्रशासनिक एवं अन्य आकर्षक व्यवसायों से निराश होने के बाद अपनाया होता है।

साक्षरता

उपरोक्त के साथ-साथ दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारण देश में साक्षरता की कमी है। भारत में औसत पढ़े लिखे लोगों की संख्या 36.17% है। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह और भी कम है। इसमें भी महिलाओं की साक्षरता तो और भी कम, केवल 24.88% है। पहली समस्या तो शिक्षा के प्रति रुचि ही कम है। विज्ञान का प्रश्न तो और भी गम्भीर है। जो बच्चे स्कूलों में प्रवेश लेते हैं, उनमें से बहुत अधिक स्कूली शिक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था :

इस समस्या का कारण ग्रामीण अर्थ व्यवस्था है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां लोगों को दो समय का समुचित भोजन भी उपलब्ध नहीं है, किताबों और कापियों का खर्च तथा स्कूल की वर्दी उन्हें ऐश्वर्य प्रतीत होता है। साथ ही, यह भ्रांति भी है कि पढ़लिखकर युवक हमारे हाथ से निकल जाएगा। देश में व्याप्त बेरोजगारी के कारण नौकरी तो मिलेगी नहीं, वह खेतों में काम करने से भी हिचकिचाएगा।

सुविधाओं की कमी :

इनके बावजूद भी यदि माता–पिता उसे स्कूल भेज दें तो भी ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान विषयक सुविधाओं की अत्यधिक कमी अपने आप में एक समस्या है। जहाँ नगरों एवं महानगरों के स्कूलों में प्रयोगशालाएं, अध्यापन सामग्री, उपकरण, नवीनतम पत्र-पत्रिकाएं आदि सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहीं पर ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों में बच्चों के बैठने के लिए उचित कमरे व फर्नीचर भी उपलब्ध नहीं है; अन्य सुविधाओं की तो चर्चा ही व्यर्थ है। अध्यापन सामग्री के नाम पर केवल चाक व डस्टर ही मिल पाते हैं।

उच्च शिक्षा :

इन सब असुविधाओं और कारणों की वैतरणी को पार करके यदि छात्र दसवीं पास कर जाता है तो महाविद्यालय में विज्ञान विषय लेने के लिए अच्छे अंकों का होना अनिवार्य है। यह भी तभी जबकि गाँव के पास के महाविद्यालय में विज्ञान संकाय हो। यदि नहीं, तो कौन इसके लिए अधिक धन खर्च करके दूर के महा-विद्यालय में पढ़ने जाएगा।

उच्च शिक्षा का माध्यम :

विज्ञान में प्रवेश पाते ही एक और कठिनाई सामने आती है, माध्यम की। हमारे विद्यालयों में मुख्यतः हिन्दी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं द्वारा ही शिक्षा दी जाती है। अंग्रेजी एक विषय के रूप में ही पढ़ायी जाती है। यह एक विषय भी ग्रामीण छात्रों के लिए दुरुह है। महाविद्यालय में जब सभी विज्ञान-विषय अंग्रेजी में सुनता है, पढ़ता है व लिखने का प्रयास करता है, तो कुछ ही दिनों में विज्ञान छोड़ कर इतिहास व राजनीति शास्त्र की ओर दौड़ लगाता है। यदि साहसवश वह विज्ञान की कक्षा में बना रहता है तो भी विषय को समझने में कम और भाषा को समझने में अधिक कठिनाई पाता है।

परीक्षा में अंकों का कम होना, अनुत्तीर्ण हो जाना अथवा आशा के अनुरूप परिणाम का न आना साधारण बात है। इसका भी एक कारण यही है कि छात्र अपने आप को अंग्रेजी भाषा में व्यक्त करने में असमर्थ पाता है। ऐसे उदाहरण देखने पर आने वाले छात्र और भी निरुत्साहित हो जाते हैं।

आर्थिक व अन्य समस्याएं :

विज्ञान के छात्र होने पर महाविद्यालय में फीस का अधिक होना, पुस्तकों, प्रयोग पुस्तिकाएं, डिसैक्शन बाक्स, प्लैटिनम तार, ऐप्रन, कोट आदि पर होने वाले खर्च भी अपने आप में एक कारण हैं।

लड़के तो गाँवों से किसी प्रकार महाविद्यालय तक आ जाते हैं परन्तु लड़कियां अभी तक भी पुरानी

रुढ़िवादी धारणाओं के कारण दसवीं कक्षा तक भी मुश्किल से पढ़ पाती हैं। यदि कोई मां-बाप पढ़ाना भी चाहते हैं तो अपने पास में ही कोई महिला महाविद्यालय खोजेंगे। यदि नहीं मिला, तो दूर के महाविद्यालय में भेजना आवश्यक नहीं समझते। यदि लड़की योग्य एवं उत्सुक है, तो प्राइवेट परीक्षा द्वारा ही आगे की पढ़ाई जारी रखने का सुझाव देते हैं। यहां यह कहना अन्यथा न होगा कि विज्ञान की पढ़ाई घर बैठ कर सम्भव नहीं है।

महाविद्यालयों का दूरी पर होना भी एक कारण है। यदि ग्रामीण क्षेत्र के छात्र 25–30 किलोमीटर की बसों या साइकिलों द्वारा यात्रा कर के महाविद्यालय आते जाते हैं तो पर्याप्त समय तथा शक्ति इसी में गंवा देते हैं। विज्ञान की पढ़ाई के लिए जो नियमितता और कठोर परिश्रम आवश्यक है, वह ये छात्र नहीं कर पाते।

समाधान :

उपरोक्त कारणों के साथ-साथ, बढ़ती हुई जनसंख्या, बदलती हुई आर्थिक व राजनीतिक मानसिकता, युवा वर्ग की उच्छृंखलता, अनुशासन हीनता की वृद्धि आदि अनेकों कारण गिनवाए जा सकते हैं, परन्तु कारण ही सोचते रहना या त्रुटियाँ ही ढूंढ़ते रहना समस्या का समाधान नहीं है। त्रुटियों को दूर करने और समस्याओं को हल करने की प्रबल इच्छा और साहस अनिवार्य है।

इस अरुचि के लिए छात्र दोषी नहीं है। उसका वातावरण, स्कूल, पृष्ठभूमि ही ऐसी है कि वह विज्ञान में बहुत अधिक रुचि नहीं ले पाता।

स्कूलों की दशा में सुधार, पढ़ाने की विधि में क्रांतिकारी परिवर्तन, अध्यापन सामग्री की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धि, शुल्कों में कमी, विज्ञान-शिक्षा का माध्यम हिन्दी व अन्य प्रादेशिक भाषाओं का होना, ग्रामीण क्षेत्रीय स्कूलों को अतिरिक्त आर्थिक अनुदान तथा सुयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति अनिवार्य है।

समय-समय पर स्कूलों व महाविद्यालयों में विज्ञान प्रदर्शनियों का आयोजन कर के हम छात्रों में विज्ञान के प्रति रुचि बढ़ा सकते हैं। यह प्रदर्शनियां यदि चलती फिरती हों तथा अलग-अलग दिनों व समय पर विभिन्न स्थानों पर दिखायी जा सकें तो छात्र वर्ग में विज्ञान के प्रति जिज्ञासा व जागरूकता बढ़ेगी। साथ ही, उसे विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों को समझने में भी पर्याप्त सुविधा होगी। यदि कोई छात्र विज्ञान के किसी सिद्धांत को नये स्थितिज अथवा गतिज मॉडल के रूप में विकसित करता है, तो उसे योग्यता के आधार पर प्रशासन द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

विद्यालयों व महाविद्यालयों में समय-समय पर कक्षाओं में, विभिन्न कक्षाओं के छात्रों में तथा अंतर्विद्यालय व अंतर्महाविद्यालय स्तर पर छात्रों के लिए निबंध लेखन, पत्र पाठन तथा प्रश्नोत्तरी कार्यक्रमों का आयोजन उनके मानसिक विकास के लिए सर्वोत्तम रहेगा।

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन विज्ञान-शिक्षा के क्षेत्र में एक सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर आये हैं। इनका उपयोग विज्ञान व प्रौद्योगिकी के आधारभूत सिद्धांतों को समझाने में अत्यंत उपयोगी हो सकता है। प्रश्नमंच कार्यक्रम, विज्ञान-खोज कार्यक्रम, विज्ञान-प्रदर्शनी इत्यादि को सभी केंद्रों से और भी अधिक रोचक बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रकार, हमारी उच्च शिक्षा संबंधी संस्थाएं जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षणिक तथा अनुसंधान परिषद, विभिन्न कार्यक्रमों की वीडियो कैसेट बनवा कर देश के, विशेष कर ग्रामीण विद्यालयों व महाविद्यालयों को उपलब्ध करा सकते हैं।

आशा कर सकते हैं कि नवीन शिक्षा पद्धति के अंतर्गत उपरोक्त एवं इससे भी अधिक सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों में छात्र वर्ग को उपलब्ध करायी जाएंगी। छात्र वर्ग की विज्ञान के प्रति रुचि बढ़ेगी एवं देश युवा वैज्ञानिकों की सहायता से विज्ञान के क्षेत्र में विश्व में उच्च स्थान प्राप्त करेगा।

* * *

सामाजिक परंपराओं की वैज्ञानिकता

रणजीत अजमानी

44/5, महेश नगर, इन्दौर (म.प्र.)-452 002.

हर समाज से जुड़ी कुछ सामाजिक परंपराएं होती हैं। ये परंपराएं स्थायी नहीं होती हैं, फिर भी, किसी सामाजिक आयोजन में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहता है। समय के साथ जब समाज में उन्नति, अवनति या अन्य कोई परिवर्तन आता है तो पुरानी परंपराओं का स्थान नयी परंपराएं ले लेती हैं। उत्तर भारतीय सामाजिक परंपराओं पर पाश्चात्य सभ्यता की पार्श्व भूमि में प्रश्न-चिन्ह लगने आरंभ हो गये हैं। कोई परंपरा क्यों आरंभ हुई और इसे आगे चलाया जाए या नहीं, इसका विवेचन प्रस्तुत है। यह विवेचन इस प्रकार के चिन्तन का आरंभ है, अन्तिम वाक्य नहीं।

हमारे पूर्वजों ने अपने ज्ञान, अनुभवों के आधार पर सामाजिक व्यवस्था बना रखी थी। हमारे रीति रिवाज, परम्पराएं और मान्यताएं आज भी इस व्यवस्था का प्रतिबिम्ब हैं। वर्तमान युग में आधुनिक लोग इन्हें रुढ़ियां समझकर इनका उपहास करते हैं तथा इन्हें अपनाने से इन्कार करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन सभी मान्यताओं को बिना समझे बूझे इनका अंधानुकरण करते हैं। इस तरह विज्ञान और आधुनिकता की दुहाई देते हुए न तो हम अपने परम्परागत रीति-रिवाजों से जुड़ पा रहे हैं, न ही संस्कारों के कारण पूरी तरह पश्चिमी आधुनिकता को अपना पा रहे हैं।

किसी भी परम्परा को अपनाने या ठुकराने से पहले हम उसकी गहराई में जाएं और देखें कि उसके पीछे क्या तथ्य हैं। विज्ञान और संस्कृति, विज्ञान और जीवन-पद्धति को हम अलग-अलग समझते हैं। ज्ञान-विज्ञान का उपयोग करते हुए, जो जीवन पद्धति बनती है, वही संस्कृति है, और इस संस्कृति का दर्शन जीवन-पद्धति से कैसे अलग हो सकता है? हमारे परम्परागत रीति-रिवाजों पर यदि हम खुली मानसिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए नजर डालें, तो हम पायेंगे कि अधिकतम रस्मों-रिवाजों के पीछे वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक कारण हैं।

विवाह संबंधी परम्पराएं

हल्दी लगाना :– शादी के समय दूल्हा-दुल्हन के हल्दी लगाने की रस्म कई सप्ताह तक चलती थी। पुराने समय में संक्रामक रोग अधिक हुआ करते थे। साफ-सफाई के इतने साधन नहीं थे। बीमारियों के इलाज व दवाइयाँ भी उपलब्ध नहीं थीं। हल्दी रोगों से लड़ने की ताकत बढ़ाती है। हल्दी लगाने से दूल्हा-दुल्हन निकट संपर्क में जाने पर भी एक-दूसरे को छूत की बीमारी नहीं दे सकते। वे रोगमुक्त हो जाते हैं। इसके अलावा, हल्दी लगाने से त्वचा में कांति आ जाती है।

परंतु आज की परिस्थितियों में एक दिन में वह भी एक घंटे के लिए हल्दी लगाना बेमानी है, क्योंकि इससे न तो त्वचा में निखार आता है और न ही व्यक्ति रोग मुक्त होता है।

गीत गाना :– हल्दी की रस्म के साथ ही कई दिनों तक गीत गाने की रस्म भी चलती थी। जहां हल्दी उसे

शारीरिक रूप से तैयार करती थी, वहीं गीत उसे मानसिक रूप से तैयार करते थे । इन गीतों में वैवाहिक जीवन, पारिवारिक संबंधों की भावनाएं, गाँव की जानकारी बहुत ही सहज तरीके से दी जाती थी । उस समय में जब कम उम्र में शादी हो जाती थी, न ही साहित्य उपलब्ध था, न ही विवाह के पूर्व ससुराल वालों से सम्पर्क । ऐसे में यदि व्यक्ति एकदम नये माहौल में जाये, तो घबराहट होना स्वाभाविक है । इसलिए, गीत गाने की परम्परा उस समय प्रासंगिक थी, परन्तु आज शादियाँ देर से होती हैं । साथ ही, पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है और ससुराल के माहौल का अन्दाजा भी लग जाता है । फिर भी, खुशी की अभिव्यक्ति के लिए यह एक अच्छा माध्यम अब भी प्रासंगिक है ।

स्नान करना :– विवाह संबंधी एक मान्यता यह भी है कि दूल्हे के स्नान का पानी इकट्ठा कर दुल्हन के लिए व दुल्हन के स्नान के बाद यह पानी दूल्हे के स्नान के पानी में मिलाया जाता है । अर्थात्, दो पानी का आपस में मिल जाना । इस परम्परा के पीछे यह बहुत गहरा मनोवैज्ञानिक कारण छुपा है कि नव दम्पत्ति भी आचार-विचार, व्यवहार से एक दूसरे में पानी की तरह मिल कर अपना जीवन निर्वाह करें ।

शादी के खेल :– इसी तरह शादी के समय होने वाले खेलों की रस्मों के भी महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार हैं । शादी के समय दूल्हा-दुल्हन द्वारा मिलजुल कर थाली उठाने और दूध में अंगूठी या अंगूठी जैसी चीज ढूंढ़ने वाले खेल आपसी समझ और सहयोग के भाव पनपने में सहायक होते हैं । साथ ही, इस तरह के खेलों के द्वारा सामने वाले व्यक्ति की मानसिकता का भी अंदाजा लगाया जा सकता है । ये उस समय प्रासंगिक थे, जब होने वाले पति-पत्नी को शादी के पूर्व मिलने नहीं दिया जाता था और कम उम्र में ही शादी हो जाया करती थी ।

पीढ़ियों का विश्लेषण :– हमारे बुजुर्गों द्वारा विवाह के पूर्व तीन पीढ़ी तक विवेचन किया जाता था । वैज्ञानिकों द्वारा भी माना गया है कि विवाह यदि किसी नजदीकी रिश्तेदार से किया जाए, तो सन्तान में कई जन्मजात कमियां हो सकती हैं ।

दहेज :– बेटी के विवाह पर पिता द्वारा दहेज दिये जाने का भी एक महत्वपूर्ण कारण था । पिता की सम्पत्ति में बेटी का हिस्सा भी है और जब वह दूसरे घर जा रही है, नया परिवार बसा रही है, तो उसकी जरूरत को देखते हुए उसका हिस्सा उसे दे दिया जाए । किन्तु, आज यह प्रथा एक सामाजिक बुराई बन गयी है । हम मूल कारण व आवश्यकता को भूल गये और दहेज कमाई का जरिया और प्रतिष्ठा का बिन्दु मान बैठे हैं । पिता को अपनी हैसियत से अधिक खर्च करना पड़ता है, चाहे इसके लिए उसे कर्ज लेना पड़े या घर का सामान बेचना पड़े । दहेज के कारण बेटी माता-पिता पर बोझ बन गयी है ।

आज बदलती सामाजिक मान्यताओं में हमें भी बदलने की आवश्यकता है । लड़के-लड़की को समानता का दर्जा देकर हमें नये समाज की रचना करने की आवश्यकता है ।

स्वास्थ्य संबंधी मान्यताएं

भारतीय चिकित्सा पद्धति का इतिहास कम पुराना नहीं है । चिकित्सा में कई अनुभवों की मदद से कुछ मान्यताएं जन-मानस के समक्ष रखी गयीं ताकि उनका स्वास्थ्य ठीक रहे ।

अर्घ्य देना :– इलाज करने से बेहतर है "बीमारी होने ही न देना" की भावना को ध्यान में रखकर कई परम्पराएं बनायी गयीं । जैसे अर्घ्य देना, यानि शरीर को नाभि तक पानी में डूबाकर हाथ में ताँबे के लोटे से सूर्य की ओर देखते हुए पानी की पतली धार बनाकर अर्पण करना । पानी और ताँबा दोनों विद्युत के सुचालक होने से एक धारा बनती है, जिससे नेत्र ज्योति ठीक बनी रहती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है ।

शाम के समय न सोना :– शाम के समय विशेषकर गोधूलि के समय सोना नहीं चाहिए, ऐसी मान्यता है,

जो वैज्ञानिक भी है। शाम के समय वातावरण में आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है, इसलिए इस वक्त सोने से मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

दौरा आना :– मिर्गी का दौरा आने पर जूता सुंघाने के पीछे वैज्ञानिक तथ्य है। पहले लोग चमड़े के जूते पहनते थे। पैरों में पसीने के कारण अमोनिया गैस निकलती है और यह गैस अपने विशेष गुण धर्म के कारण बेहोशी तोड़ सकती है, परन्तु प्लास्टिक की चप्पल या प्लास्टिक के जूते सुंघाने का कोई औचित्य नहीं है।

उपवास :– उपवास का महत्व आज के आधुनिक युग ने भी स्वीकारा और उसके ही परिवर्तित और आधुनिक रूप में डायटिंग और स्वास्थ्य केन्द्र बने हैं, जहाँ व्यक्ति को नपातुला भोजन लेने की सलाह दी जाती है। मूलतः, यह अंग्रेजी शब्द "फास्ट" है, जिसका अर्थ होता है निश्चय/दृढ़ अर्थात् उपवास करने से व्यक्ति का स्वास्थ्य भी ठीक रहता है, संकल्पशक्ति भी बढ़ती है। साथ ही, उपवास से शरीर के पाचन-अंगों को विश्राम मिलता है और आगे कार्य करने की नयी स्फूर्ति मिलती है। कुल मिलाकर देखा जाए, तो उपवास से हमारे जीवन के जैविक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक पहलू जुड़े हैं। कुछ समाजों में एक और भी रस्म होती है, जिसमें उबला पानी ग्रहण करना होता है। यह दो मौसमों के संधिकाल के समय होती है। मौसम के बदलाव के समय बीमारी होने की संभावना ज्यादा रहती है। इसलिए, इस प्रकार का सादा भोजन व जल ग्रहण करना आज के वैज्ञानिक भी महत्वपूर्ण मानते हैं।

मासिक धर्म :– महिलाओं से संबंधित अनेक रस्मों-रिवाजों को भी परिस्थिति के अनुसार तय किया गया है, जैसे मासिक धर्म के समय अलग बिठा देना, कोई काम न करने देना। एक तो जीवाणुओं की वृद्धि के लिए रक्त बहुत अच्छा माध्यम है; दूसरा, साफ-सफाई के साधन इतने विकसित नहीं थे। इसलिए, अलग रहकर आराम करना स्वास्थ्यकारक था।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियों ने भी ऐसे 150 लक्षणों को खोज निकाला है, जिसके कारण इस समय मानसिक एवं भावनात्मक तनाव रहता है। अतः, शारीरिक व मानसिक आराम बहुत जरूरी होता है।

ग्रहण :– गर्भवती स्त्रियों के लिए ग्रहण देखना बहुत नुकसान दायक होता है। देखने से गर्भ में विकसित हो रहा भ्रूण विकृत या विकलांग भी हो सकता है। शायद इसलिए ही उस वक्त पूजा पाठ करने को कहा जाता था।

गर्भावस्था एवं प्रसव :– गर्भावस्था के अंतिम माहों में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस समय शारीरिक संसर्ग से प्रसव में तकलीफ आ सकती है। साथ ही, इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी कम महत्वपूर्ण नहीं। पहले कम उम्र में शादी हो जाया करती थी। प्रथम प्रसव के समय घबराहट, भय रहता है। ऐसे समय, माँ की भावनात्मक सुरक्षा बहुत बड़ा काम करती है, क्योंकि वह बेटी को ज्यादा अच्छे-से समझ सकती है। साथ ही, बेटी को भी मनोवैज्ञानिक सुरक्षा का अहसास होता है। आज के वैज्ञानिकों का भी मानना है कि गर्भावस्था में भावनात्मक सुरक्षा मिलने पर प्रसव पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। फिर 40 दिन तक काम न करने देना, क्योंकि प्रसव के समय माँ के शरीर को बहुत नुकसान पहुंचता है। इसलिए, आराम की जरूरत होती है। इस समय मेवे, हल्दी, घी के लड्डू दिये जाते थे। आज हल्दी का एंटीसेप्टिक गुण सर्वमान्य है। भारतीय चिकित्सा पद्धति में हल्दी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें जिंजाबहरन तेल रहता है, जो अम्लत्व नाशक, वायु, रक्त शोधक, सूजन कम करने और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। इस समय संक्रमण होने की संभावना बहुत ज्यादा रहती है, इसलिए हल्दी और घी के लड्डू दिये जाते थे। विटामीन "ए" केवल वसीय पदार्थों में ही घुलनशील होता है, इसलिए घी में ही लड्डू बनाये जाते थे।

हमारे बुजुर्गों, दाइयों का ऐसा मानना है कि बच्चे को दायीं करवट ही सुलाना चाहिए। यह तार्किक दृष्टि से उचित है। शरीर के भीतर हृदय, आमाशय व जिगर का अधिक भाग बायीं ओर होता है। यदि बच्चा बायीं करवट सोयेगा तो उल्टी की संभावना अधिक बढ़ जाती है।

प्रसाधन :– यहां शृंगार प्रसाधनों की चर्चा करना भी प्रासंगिक होगा। तेल, मेंहदी लगाना आदि हम गौर से देखें, तो पाएंगे कि शीत ऋतु में आने वाले त्योहार जैसे दिवाली पर मेंहदी नहीं लगायी जाती है, परन्तु अन्य ऋतुओं में आने वाले त्योहारों पर मेंहदी लगायी जाती है, क्योंकि पूजा अर्चना के लिए बिना चप्पल दूर तक जाना पड़ता था। साथ ही, पूजा की प्रक्रिया भी लम्बी होती थी।

बिंदी लगाना :– पहले चंदन की ही बिंदी लगायी जाती थी, ताकि दो बाहों के बीच शरीर के अंदर जो बिंदू होता है, इस चंदन की बिंदी के कारण उसे ठंडक मिलती थी। इस तरह, बिंदू एकाग्रचित्त होकर काम कर सके। साथ ही, माथे पर लाल बिंदी लगाने से ऊर्जा का अधिकतम अवशोषण संभव होता है, क्योंकि वर्णपट में लाल रंग की तरंग दैर्घ्य सबसे ज्यादा होती है। कान, नाक, को छिदवाने में जहां सौंदर्य बोध है, वहीं विज्ञान ने यह स्वीकारा है कि उससे शरीर के विभिन्न स्रावों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

भोजन संबंधी

व्यक्ति के ज्ञान का मूल स्रोत पुस्तकें नहीं, बल्कि उसकी अवलोकन, अनुभव और विचार शक्ति है। जब यह अनुभव जन्य तथ्य, उसे प्रासंगिक लगने लगे, तो उन्हें सामाजिक मान्यता मिलने लगी। भोजन बनाते समय व भोजन करते समय भी हमारे बुजुर्गों ने कुछ मान्यताएं बना दीं, जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक बना रहे। इन मान्यताओं की पृष्ठभूमि में कई बार सामाजिक व्यवस्था ठीक बनी रहे, ऐसे मनोवैज्ञानिक कारण भी रखे होंगे।

पहली रोटी :– भोजन बनाते समय पहली रोटी गाय के लिए बनायी जाती थी। पहले भोजन बनाने के लिए लकड़ी या कोयले का इस्तेमाल होता था। इसे नियंत्रित करना भी मश्किल होता था। इसलिए, या तो रोटी बहुत ज्यादा जल जाती थी या कच्ची रह जाती थी, और इस तरह की रोटी खाने से व्यक्ति को पेट संबंधी विकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु, आज गैस या हीटर के युग में इस परंपरा का कोई अर्थ नहीं है।

हाथ-पैर धोने संबंधी :– भोजन शुरू करने के पहले हाथ पैर धोने से पाचक रसों का स्राव बढ़ता है, और भोजन का पाचन बेहतर होता है। इस बात की पुष्टि चिकित्सा विज्ञान ने भी कर दी है।

आलथी-पालथी में बैठना :– आलथी-पालथी मारकर बैठने का महत्वपूर्ण कारण यह है कि इस तरह बैठने से घुटने की मांसपेशियों का व्यायाम हो जाता है। इसके कारण यह घुटने का दर्द होने की संभावना कम हो जाती है। जहां भोजन मेज-कुर्सी पर बैठ कर किया जाता है, वहां अधिकतर लोग घुटने के दर्द के कारण परेशान हैं।

एक कौर :– भोजन शुरु करने से पहले रोटी का एक कौर थाली के बाहर रखकर पानी का घेरा आज भी कई घरों में बुजुर्ग खींचते हैं। कच्चे घर में जहां रोशनी की व्यवस्था भी ठीक नहीं है और जमीन पर बैठकर भोजन किया जाता है, वहां ऐसा करना जरूरी होता है। जमीन पर चलती चींटियाँ इत्यादि रोटी के टुकड़े पर आकृष्ट हो जाती है, और जमीन पर पानी का घेरा खींचने से कीड़े थाली में नहीं चढ़ पाते। जहां मेज कुर्सी पर भोजन किया जाता है, रोटी का कौर बाहर रखने का कोई औचित्य नजर नहीं आता है।

शाम के समय :– शाम या रात को अचार, मुरब्बा निकालना आज भी कई घरों में नहीं किया जाता है। इसके पीछे विज्ञान बहुत स्पष्ट है। शाम के समय वातावरण में कीट, पतंगे और जीवाणुओं की संख्या

अधिक हो जाती है । साथ ही, वायु में हल्की सी नमी आ जाती है, जिससे अचार खराब हो सकता है ।

ग्रहण :– ग्रहण के बाद पानी, बना हुआ भोजन, उपयोग में नहीं लाना चाहिए । इस तथ्य से आज वैज्ञानिक भी सहमत हैं । ग्रहण के समय कई विकिरण निकलते हैं, जिनसे भोजन विषाक्त हो जाने की संभावना बहुत ज्यादा रहती है । ग्रहण के बाद स्नान करने के पीछे सफाई की भावना ही थी ।

सोला :– रसोई में काम शुरू करने के पूर्व वस्त्र बदलना, जिसे "सोला" कहते हैं, आज भी कई घरों में प्रचलित है । पुराने समय में महिलाओं को गोबर लीपना, कपड़े धोना आदि सभी काम खुद करना होते थे । रसोई में काम शुरू करने के पूर्व वस्त्र बदलकर पानी भरना चाहिए, क्योंकि अधिकतर बीमारियाँ पानी जन्य होती हैं । इसलिए "सोला" को रसोई में कार्य करने के बाद धोकर अगले दिन पुनः पहनना स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था ।

मीठा :– भोजन के बाद कुछ मीठा खिलाना आज भी उचित है, क्योंकि मीठा खाने से एक तो लार का स्राव ज्यादा होता है, दूसरा मीठा खाने से संतुष्टि का भाव आता है । इससे पाचन ठीक होता है । ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है ।

सामाजिक मान्यताएं

समाजशास्त्रियों और मानव शास्त्रियों के अनुसार दुनिया में तीन प्रकार के अंध विश्वास पाये जाते हैं – वर्जना "टेबूज", ताबीज "फेटिशेज" और कर्मकांड "रिच्युअल्स" । इनका विश्लेषण करने पर ऐसा लगता है कि मान्यताएं वैज्ञानिक थीं और हैं : जैसे :–

मुन्डन :– पहले अधिकतर मौतें संक्रामक रोगों से होती थीं । संक्रमण से बचने के उद्देश्य से ही लोग दाह संस्कार के बाद स्नान करके ही घर जाते थे । साथ ही, मृत्यु के समय पूरा गाँव मुंडन करवाता था, क्योंकि संक्रमण बालों में सबसे पहले होता है । अतः, किसी भी प्रकार के संक्रमण से बचने के लिए मुंडन किया जाता था ।

कपाल क्रिया :– दाह संस्कार में कपाल क्रिया की जाती है । इसके पीछे मानना है कि बेटा कपाल क्रिया करेगा तब ही आत्मा को मुक्ति मिलेगी । भावनात्मक संबंधों की गहराई बहुत ज्यादा होती है, इसलिए मृतक के बेटे को मानसिक रूप से यह स्वीकारने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था कि मृत्यु एक सच है जिसका वरण सबको करना होता है ।

पगड़ी :– वैसे ही देश के कई हिस्सों में वरिष्ठ सदस्य की मृत्यु के बाद परिवार के सबसे बड़े पुरुष को पगड़ी पहनाने की रस्म होती है, जिसके पीछे यह कारण होता है कि अब वह व्यक्ति उस परिवार का मुखिया माना जाएगा, यह सार्वजनिक तौर पर विदित हो जाए । साथ ही, पहले संयुक्त परिवार ज्यादा थे तो उस व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी के लिए मानसिक रूप से तैयार करना भी था ।

मंदिरों की स्थापना :– मंदिरों में सुन्दर मूर्तियों की स्थापना व बड़े-बड़े घंटों को लगाने के पीछे भी विज्ञान छुपा है । मंदिरों में गुगल, लोभान, अगरबत्ती जलाने से एक वातावरण बनता है । इस तरह का वातावरण व्यक्ति के सोचने की प्रक्रिया में बहुत सहायक होता है ।

सामान्यतः व्यक्ति का ध्यान दो कारणों से विचलित होता है । पहला देखने से, दूसरा सुनने से । अतः, व्यवधानों से बचने के लिए सुन्दर मूर्तियों की स्थापना की गयी । हर व्यक्ति के हृदय व आंखों में सौंदर्य-बोध होता है, अतः सुंदर मूर्तियों से उसका ध्यान भटकेगा नहीं । मंदिर में जलते दीपक से व्यक्ति का ध्यान केंद्रित होता है, क्योंकि प्रकाश और ताप का आंखों से सीधा संबंध होता है । बड़ी-बड़ी घंटियों की आवाज से आसपास की अन्य आवाजें, व शोर भी उसका ध्यान नहीं बंटा पाएंगे । इसलिए सुंदर घंटियों की स्थापना की जाती है ।

प्रसाद में तुलसी का पत्ता रखने से प्रसाद पर चींटी या अन्य कीट पतंगे नहीं आयेंगे जिससे प्रसाद दूषित नहीं होगा। कीट पतंगे कई तरह की बीमारियों को फैला सकते हैं। ठीक उसी तरह मंदिरों में कुआं और नीम के पेड़ों का कम महत्व नहीं है। पहले लोग दूर-दूर से बिना चप्पल के आते थे, प्यास भी लग जाती थी। रास्ते भी कच्चे थे इस कारण शरीर पर धूल लग जाती थी और थकान भी बहुत हो जाती थी। कुओं के विशेष गुण-धर्म के कारण उनका चिकित्सा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत महत्व है। मंदिर की स्थापना व कर्मकांड के स्पष्ट कारण थे, परन्तु समय आज इस बात का गवाह है कि आज वह भावना नहीं रह गयी है। .

तुलसी की पूजा :– घरों में तुलसी की पूजा, बरगद की पूजा की जाती है। तुलसी का उपयोग कई रोगों को होने से रोकता है और कई रोगों के उपचार में होता है। अतः, घर पर लगाकर रखने से उसका तुरंत उपयोग हो सकता है। यहां यह स्पष्ट करना प्रासंगिक होगा कि पहले जब औषधि विज्ञान इतना विकसित नहीं था, तब इसका महत्व ज्यादा था। आज भी तुलसी की उपयोगिता पर कोई शंका नहीं है। बरगद बहुत बड़ा मजबूत पेड़ होता है। पुराने समय में जब यात्राएं लम्बी और विकट होती थीं, तो इन बड़े पेड़ों के नीचे व्यक्ति अपना डेरा डाल सकता था। कोई इसे काटे नहीं इसलिए इसकी पूजा की जाती थी। साथ ही, पर्यावरण की रक्षा भी होती थी।

नागपंचमी :– नागपंचमी पर नाग की पूजा करने के पीछे संभवतः व्यावहारिक पक्ष ज्यादा महत्वपूर्ण रहा होगा। बारिश के समय बहुत सांप निकलते हैं, उसमें नाग विशेष रूप से जहरीला होता है। अतः, इनको पकड़कर पूजा करना ताकि स्वतंत्र सांप भी कम हो जायें, साथ ही, पूजा करने से मनोवैज्ञानिक भय भी कम हो जाए, ऐसा प्रयास रहा होगा। चूहे जैसे हानिकारक प्राणियों की संख्या भी सांपों द्वारा सीमित रहती है। अतः, सांपों को पूज्य मानकर उनकी हत्या नहीं की जानी चाहिए।

होली–दीपावली :– इसी तरह दीपावली, होली, भी हमारे देश की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के प्रतिबिम्ब हैं। यहां पहले मनोरंजन के इतने साधन नहीं थे। मिलजुलकर सुख-दुःख के मौकों को सामूहिक रूप से स्वीकार करने की सामाजिक व्यवस्था थी। इसलिए त्यौहारों का बहुत महत्व है। होली के समय फसल की कटाई होती है। हल्की ठंड, हल्की गरमी में रंगों के साथ खेलना एक मनोवैज्ञानिक सुख देता है। आपस में रंजिश दूर करने का यह एक अवसर भी होता है। बारिश के बाद गंदगी हो जाती है। पहले कच्चे घर हुआ करते थे। उनकी सफाई करना बहुत महत्वपूर्ण बिंदु था। इसलिए दीपावली के पहले घरों की रंगाई-पुताई की जाती थी। खरीफ की फसल की कटाई के अवसर पर दीपावली मनाया जाना हमारे सामाजिक सुख, उल्लास का प्रतिनिधित्व करता है।

यज्ञ :– यज्ञ के संदर्भ में भी कई मान्यताएं हैं। ये कितने वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित हैं यह तय करना मुश्किल होगा। आदिकाल से चली आ रही इस परंपरा का उद्देश्य कामनाओं की पूर्ति, सुख की प्राप्ति आदि रहा होगा। पुराने समय में संक्रामक रोग अधिक हुआ करते थे। यदि समय रहते स्थिति नियंत्रण में न की जाय, तो ये महामारी का रूप धारण कर लेते थे। इस स्थिति से बचने के लिए, हवन में उपयोग की जाने वाली सामग्री जीवाणुनाशक, कीटाणुनाशक होती थी। वायु की दृष्टि से हवन महत्वपूर्ण है। किशमिश, मुनक्का जलाने से टाईफाइड के बहुत सारे कीटाणु मर जाते हैं, ऐसा आयरलैण्ड और दक्षिण अमेरिका में प्रयोगों द्वारा स्थापित किया गया है।

पुराने समय में कच्चे छोटे घर होते थे। हो सकता है अंधेरे में कोई कीमती चीज गिर गयी हो, सो रात के समय झाड़ू नहीं लगायी जाती थी। जिन्दगी के हर पहलू को समझकर मान्यताओं, परम्पराओं, रस्मों-रिवाजों को बनाया गया था।

कुल मिलाकर देखा जाए, तो हमारी परम्पराएं, मान्यताएं विशिष्ट परिस्थितियों के लिए बनायी जाती

हैं। इसलिए परम्परागत रीति-रिवाज़ों और मान्यताओं के प्रति आज हमें दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। हर पुरानी बात सही है या हर रीतिरिवाज दकियानूसी है, दोनों विचारधाराएं ही अवैज्ञानिक हैं। हमें खुली मानसिकता से हर रीतिरिवाज़ को आज की परिस्थितियों में जाँचने की आवश्यकता है। ये परम्पराएं यदि आज भी प्रासंगिक समझें, तो जारी रखें, वरना त्याग दें और यदि उनमें सुधार की गुंजाइश हो, तो सुधार करें। बदले हुए परिवेश में नये मूल्यों में आस्था के आधार पर सोच बनता है। इन सबसे बढ़कर इस सोच की प्रासंगिकता है, क्योंकि मानस हमेशा नवीनता प्रेमी होता है।

* * *

MIDHANI

Centre for advanced metals technology

Product Range

- Superalloys
- Titanium
- Special Steels
- Resistance Alloys
- Alloys for Electric & Electronic Applications
- Powder Metallurgy Products

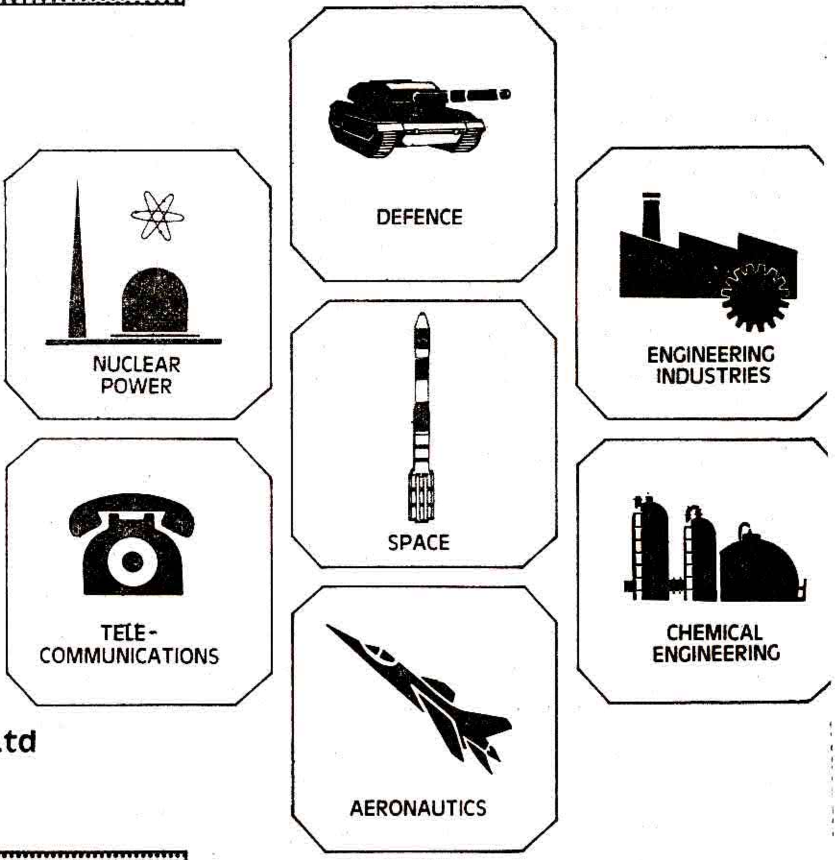

Mishra Dhatu Nigam Ltd
P.O. Kanchanbagh
Hyderabad-500 258.

वायु प्रदूषण

संजय कुमार सिंह

शोध छात्र, पर्यावरण जीव विज्ञान प्राध्ययन केन्द्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) 486 003.

वायु-प्रदूषण का सुरसा-मुँह संपूर्ण प्राणिजगत को निगल जाने के लिए फैल रहा है। वैज्ञानिकों ने इसका पूर्वाभास करा दिया था, इसलिए कुछ उपाय भी किये जा रहे हैं। परन्तु, उपाय जिस गति से सफल हो रहे हैं, उससे अधिक गति से वायु प्रदूषण फैल रहा है। अधिक से अधिक पेड़ लगाकर, इससे बचने में हम अपना व्यक्तिगत योगदान कर सकते हैं। इससे बचने के लिए विकसित देशों को जल्दी ही और विकासशील देशों को कुछ समय बाद कुछ बड़े कदम उठाने पड़ेंगे। प्रस्तुत है प्रदूषण के कारण, परिणाम, परीक्षण हेतु यंत्र और उसके निवारण के कुछ उपाय।

मानव का प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करना कोई नयी बात नहीं है। यह उस समय से ही चल रहा है जब से मानव ने अपने को ठंडक से बचाने के लिए लकड़ी व अन्य ईंधन को जलाना शुरू किया। यह छेड़खानी जन-संख्या में वृद्धि तथा औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ निरन्तर बढ़ती जा रही है। मानव जहां इलेट्रानिक युग में प्रवेश कर उन्नति कर रहा है, वहां पर पर्यावरण को प्रदूषित कर अपने पैरों में कुल्हाड़ी भी मार रहा है। वायु में उपस्थित अनेक प्रकार के प्रदूषकों से मानव जीवन संकट में पड़ गया है। यदि पानी गन्दा है तो उसे हम नहीं पियेंगे या साफ कर उसका उपयोग करेंगे। लेकिन लाख प्रयास करें, तो भी हम गन्दी हवा में सांस लेने से नहीं बच सकते हैं।

औद्योगिक क्रान्ति के युग में उद्योगों के द्वारा जहां एक ओर अत्यधिक लाभ हुआ है, वहीं दूसरी ओर कारखानों से निकलने वाली दूषित गैसों या अन्य हानि-कारक जैवोत्पादों के कारण भयानक परिणाम सामने आये हैं। प्रति वर्ष हम साढ़े 46 करोड़ टन खनिज ईंधन का उपयोग करते है तथा 2 करोड़ 60 लाख टन विषैले पदार्थ हवा में उड़ा रहे हैं। एक टन पेट्रोल के उपयोग के लिए 9900 घन मीटर हवा की आवश्यकता होती है। एक टन तेल के लिए 10,300 घनमीटर, एक टन कोयले के लिए 11,600 घन मीटर, एक टन गैस के लिए 15,500 घन मीटर तथा एक टन धातु खनिज के लिए लगभग 12 टन हवा की आवश्यकता होती है।

भारत में वायु प्रदूषण मोटर गाड़ियों से निकलने वाली गैसों से अधिक होता है। बम्बई में इस माध्यम से 60 प्रतिशत तक तथा दिल्ली में 40 प्रतिशत तक वायु प्रदूषण होता है। शुद्ध पर्यावरण में आयतन के अनुसार 78% नाइट्रोजन, ·03%, CO_2 तथा 16% तक आक्सीजन होती है। इन गैसों के अतिरिक्त ओजोन, हाइड्रोजन सल्फाइड, सल्फर डाईआक्साईड और अक्रिय गैसें भी होती हैं। यदि इन गैसों में किसी भी गैस का अनुपात किसी भी प्रकार विचलित होता है तो वातावरण प्रदूषित होने लगता है। वैज्ञानिकों के अनुसार

एक मोटर गाड़ी एक मिनट में इतनी आक्सीजन खर्च करती है जितनी 1135 व्यक्ति सांस लेने के लिए उपयोग करते हैं।

ग्रीन हाउस प्रभाव :

सर्व प्रथम जान टिन्डल नामक प्राकृतिक वैज्ञानिक ने वर्ष 1861 में कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) से संबंधित "ग्रीन हाउस प्रभाव" की जानकारी दी। इस प्रभाव के अनुसार CO_2 की अधिक सांद्रता वातावरण को गर्म बना देती है। वास्तव में CO_2 सूर्य के विकिरण के लिए अधिकांशतः पारदर्शी होती है जिसके कारण पराबैंगनी से अवरक्त तक के विकिरण के अधिकांश भाग को CO_2 पृथ्वी तक पहुंचने देती है परंतु ताप विकिरणों (अवरक्त विकिरण का विशिष्ट भाग) के लिए CO_2 अपारदर्शी होती है। यह पृथ्वी की गर्मी का अवशोषण भी कर लेती है। यही कारण है कि पृथ्वी का तापमान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। CO_2 के इस प्रभाव को ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं।

जीवाश्म ईंधन (मुख्य रूप से कोयला) के दहन से भी वातावरण में CO_2 की मात्रा बढ़ती है। साथ ही, जंगलों का बड़ी तेजी से सफाया किया जा रहा है। फलस्वरूप वातावरण में CO_2 का प्रतिशत बढ़ रहा है। पिछले 100 वर्षों में CO_2 की वातावरण में प्रतिशत मात्रा बढ़ी है। पर्यावरण विशेषज्ञों की एक रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि वर्ष 2100 तक सम्पूर्ण पृथ्वी का तापमान 1° से 4.5° से. तक बढ़ जायेगा। हाल ही में अमेरिका की एक राष्ट्रीय शोध संस्था ने यह जानकारी दी है कि यदि वातावरण में CO_2 गैस की सांद्रता 300 से 600 भाग प्रति दस लाख हो जाये तो औसत तापमान में 3° से. से 1.5° से. की वृद्धि होगी। तापमान में अत्यधिक बढ़ोत्तरी के कारण उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों की बर्फ पिघल सकती है। जिससे समुद्र सतह से पानी ऊपर उठ जायेगा जिसके परिणाम काफी भीषण हो सकते हैं।

वर्ल्ड मीटिरयोलाजिकल संगठन ने कहा है कि दुनिया में अव्यवस्थित औद्योगिकीकरण से CO_2 की बढ़ती मात्रा के कारण इस सदी के अन्त तक विश्व की जलवायु में भारी परिवर्तन आ सकता है। वायु मंडल में CO_2 की वृद्धि के कारण धरती के पास वातावरण ज्यादा गर्म हो रहा है। पिछली शताब्दी में CO_2 का स्तर 270 से 295 प्रति दस लाख भाग था जो अब 338 भाग हो गया है। यदि CO_2 इसी तरह से बढ़ती गयी तो वर्ष 2000 तक 5100 करोड़ टन तथा 2025 तक 17800 करोड़ टन हो जायेगी जिससे निश्चित रूप से वातावरण का तापमान अब से काफी बढ़ जायेगा।

अम्लीय वर्षा :– कोई भी वर्षा जिसका pH 5.6 से कम होता है अम्लीय वर्षा कहलाती है। इस शब्द का उपयोग सर्वप्रथम वर्ष 1872 में ब्रिटिश रसायनज्ञ राबर्ट एनयूस स्मिथ ने किया था। आज पूरे विश्व में बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण एवं यातायात साधनों से वातावरण में सल्फर डाईआक्साइड (SO_2) एवं नाइट्रोजन आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 1966 में औद्योगिक इकाइयों एवं यातायात साधनों से अपने देश के वातावरण म SO_2 की मात्रा 1.4 करोड़ टन थी। यह बढ़कर वर्ष 1979 में 3.2 करोड़ टन हो गयी थी। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि इस शताब्दी के अन्त में यह मात्रा और अधिक बढ़ जायेगी। इस प्रकार, वर्ष 1966 से लेकर 1979 तक 13 वर्षों में 21% SO_2 की वृद्धि हुई है। यह उसी दौरान अमेरिका के 8.4% वृद्धि से काफी अधिक है। यह SO_2 वातावरण में नमी के साथ मिलकर सल्फ्यूरिक अम्ल की बूंदों को बनाती है जो वर्षा के साथ पृथ्वी पर गिरती है।

अम्लीय वर्षा किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक एवं जैविक दोनों घटकों को प्रभावित करती है। मिट्टी एवं जल की अम्लीयता को बढ़ाकर उनमें रहने वाले जीवित जन्तुओं की सामान्य प्रक्रिया को प्रभावित करती है। वृक्षों की पत्तियों के इपीडर्मिस व स्टोमेटा को प्रभावित करती है, जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है और वृक्षों में पानी की कमी आने से समय के पहिले पत्तियां गिर जाती हैं। अम्लीय वर्षा पत्तियों

के क्लोरोफिल के मैग्नीसियम आयन को रासायनिक क्रिया करके नष्ट कर देती है जिससे उनकी भोज्य पदार्थ बनाने की क्षमता घट जाती है। मिट्टी की अम्लीयता बढ़ने से विषयुक्त धातु आसानी से पौधों द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं जिससे पूरी खाद्य श्रृंखला प्रभावित होती है। अम्लीय वर्षा से ताजमहल एवं अन्य प्रसिद्ध इमारतों के क्षरण का खतरा पैदा हो गया है। मनुष्यों में श्वसन संबंधी विभिन्न प्रकार के रोगों की सम्भावना बढ़ गयी है।

ओजोन पर्त का नष्ट होना :

पृथ्वी से करीब 25 से 30 कि.मी. तक की ऊंचाई पर स्ट्रेटोस्फीयर में ओजोन गैस की एक पर्त होती है जो सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करके उन्हें पृथ्वी पर आने से रोकती है। लेकिन आजकल यह महत्वपूर्ण ओजोन परत उड़ते हुए जेट विमानों, प्रक्षेपास्त्रों और नाभिकीय परीक्षणों से नष्ट हो रही है। जेट विमान से धुएं के रूप में नाइट्रिक आक्साइड (NO_X) गैस एवं हाइड्रोकार्बन निकलते हैं। यह NO_X सीधे ओजोन अणु को तोड़ देती है। जिसके परिणामस्वरूप निम्न प्रतिक्रिया होती है।

$$\text{प्रज्वलन} \longrightarrow NO$$
$$NO + O_3 \longrightarrow NO_2 + O_2$$
$$O_3 + hv \longrightarrow O_2 + O$$
$$NO_2 + O \longrightarrow NO + O_2$$
$$2O_3 + hv \longrightarrow 3O_2$$

इसके अलावा, क्लोरोफ्लोरो कार्बन रसायन, रेफ्रीजरेटरों, वातानुकूलित यंत्रों, एयरोसोल (सुगंधित द्रवों की फुहार) वाली शीशियाँ से भी ओजोन की पर्त को नुकसान हो रहा है। पश्चिमी देश तो इसको समाप्त करने पर तुले हुए हैं, जहां पर घर-घर में इस्तेमाल किये जा रहे सुगंध के स्प्रे, दाढ़ी बनाने का झाग, फुस्स से निकालने के लिए क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उपयोग किया जा रहा है।

यह समूचे विश्व की समस्या है क्योंकि इसकी क्षति से किसी भी देश का कोई भी प्राणी सूर्य से निकलने वाली पराबगनी किरणों के दुष्प्रभाव से नहीं बच पायेगा। पराबैंगनी किरणों का मुख्य हानिकारक प्रभाव कोशिका में उपस्थित डी.एन.ए. को क्षति ग्रस्त करना है तथा ठंडे देशों में जहां पर लोग समुद्र के किनारे धूप का स्नान करते हैं, उनको तो चमड़े के कैंसर तक होने का डर रहता है।

वायु प्रदूषण के फलस्वरूप बड़े नगरों के ऊपर उष्णता का एक टापू सा बन जाता है। दिन में सूर्य की गर्मी उसमें जमा होती है। रात को यह उसे छोड़ देती है। खास तौर पर नगरों के ऊपर से उष्णता के टापू वहां के मकान के तीन गुना ऊंचे होते हैं। लेकिन रात को जब हवा ऊपर उठती है तो वह चारों ओर देहात की ओर फैल जाती है।

मध्य प्रदेश में चूने के पत्थर के विशाल भण्डार हैं, जिनके आधार पर कैमोर, सतना, वानकोट, जामुल और बिलासपुर में सिमेंट के कारखाने हैं। यहां से उड़ने वाले सिमेंट के कण नाक के द्वारा फेफड़ों में चले जाते हैं और कई प्रकार की बीमारियां फैलती हैं। कारखानों से निकलने वाली हानिकारक गैसों में मुख्यतः CO और CO_2 होती हैं।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस समय भारत के साठ करोड़ लोग हवा के प्रदूषण से प्रभावित हैं। वायु प्रदूषण का सबसे ज्यादा असर नगरों व महानगरों में परियात पुलिस पर होता है। दिन भर कार्य करने के बाद पुलिस के फेफड़ों में इतना विष भर जाता है कि मानो उसने 105 सिगरेटें पी हों।

पौधों पर सल्फर डाई आक्साइड आक्सीकारक, नाइट्रोजन आक्साइड, हैलोजन यौगिक, अमोनिया, एथिलीन, पारा, तथा स्वचलित वाहनों के धुएं से गम्भीर प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप पौधों में पिगमेन्टेशन, क्लोरोसिस विरंजन और नेक्रोसिस की क्रिया हो जाती है।

यूं तो प्रदूषण की रोकथाम से संबंधित कई नियम भारत में भी बनाये गये, उदाहरणार्थ कलकत्ता में वर्ष 1905 में, बम्बई में 1912 में, नागपुर में 1958 में,

तत्पश्चात गुजरात व दिल्ली में। इसके अलावा, देश में वायु प्रदूषण नियंत्रण हेतु लोक सभा द्वारा वायु प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981 में पारित किया गया है जो विभिन्न उद्योगों से होने वाले वायु प्रदूषण की रोकथाम के समुचित उपाय करेगा। औद्योगिक विस्तार के साथ-साथ शुद्ध वायु पर्यावरण संतुलन की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विकास अत्यन्त आवश्यक है परन्तु बढ़ते हुए प्रदूषण को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

प्रख्यात प्रकृति विद डा. सालिम अली ने ठीक ही कहा था " भारत में प्रकृति को संरक्षण देने के अधिनियम संसार में सम्भवतः सबसे व्यापक हैं लेकिन उन्हें लागू करने का तंत्र उतना ही निष्क्रिय है।"

प्रदूषण नियंत्रण हेतु निम्नलिखित कुछ सुझाव उपयोगी होंगे —

(1) कारखाने आवादी से दूर हों। (2) कारखाने की गन्दगी उपचार के बाद छोड़ी जाय। (3) कारखाने में धुआं रहित ईंधन व फिल्टर का उपयोग हो। (4) घरों में धुआं रहित चूल्हे का उपयोग हो। (5) धुआं उत्पन्न करने वाले वाहन घातक हैं इनका उपयोग सीमित हो। (6) पेट्रोल व डीज़ल वाहनों की माप "स्मोक मीटर" से की जाय। (7) धुआं उगलने वाले वाहनों का लाइसेंस रद्द किया जाय। (8) पेट्रोल चालित वाहनों के स्थान पर डीज़ल चालित वाहनों को प्रोत्साहित किया जाय। (9) प्राकृतिक खाद का अत्यधिक उपयोग हो। रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं का उपयोग आवश्यकता से अधिक न किया जाय। (10) हरे-भरे वृक्ष की रक्षा की जाय। सड़कों के दोनों ओर सघन वृक्ष लगायें जायें। वृक्ष वायु प्रदूषण के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम भी करेंगे। (11) वायु में मुक्त होने वाले प्रदूषकों को बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरायें तथा सफाई करने वाले पदार्थ मिलायें।

प्रदूषण नियंत्रण के लिए निम्नलिखित यंत्रों/संसूचकों का उपयोग किया जा सकता है :

(1) अवरक्त गैस विश्लेषक (इन्फ्रारेड एनालाइजर), (2) तापीय चालकता गैस विश्लेषक (थर्मल कन्डक्टिविटी गैस एनालाइजर)। (3) गैस वर्ण लेखन (गैस क्रोमेटोग्राफी)। (4) ज्वाला आयनन संसूचक (फ्लेम आयोनाइजेशन डिटेक्टर)। (5) गैस संछेद विश्लेषक (गैस ट्रेस एनालाइजर)। (6) वैद्युत रासायनिक संछेद गैस विश्लेषक (इलेक्ट्रोकेमिकल ट्रेस एनालाइजर)। (7) स्पंदित पराबैंगनी प्रतिदीप्ति विश्लेषक (पल्स अल्ट्रावायलेट फ्लोरोसेन्स एनालाइजर) (8) वर्णमिति विश्लेषक (केलोरीमीटर एनालाइजर)। (9) रसो संदीप्ति विश्लेषक (कीमो ल्यूमीनीसेन्ट एनालाइजर)। (10) स्थिर वैद्युत अवक्षेपित (इलेक्ट्रोस्टेट प्रेसीपिटेटर)।

किसी भी देश के विकास के लिए औद्योगीकरण का होना आवश्यक है लेकिन औद्योगीकरण से पर्यावरण प्रदूषण का खतरा बढ़ेगा। अतः, औद्योगीकरण एवं पर्यावरण संतुलन के बीच समन्वय रखना आवश्यक है। औद्योगीकरण बढ़े लेकिन साथ ही साथ योजना के अनुसार प्रदूषण की सही समय पर रोक थाम की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि कई विकासशील देशों में जहां औद्योगीकरण के कारण बेकारी बढ़ रही है, मज़दूरों का उपयोग संरक्षण की योजनाओं में हो सकेगा, जिससे संरक्षण की योजना के साथ-साथ बेकारी की समस्या हल हो सकेगी। चीन में पानी संरक्षण तथा नये वन लगाने की योजना इस दृष्टि से काफी सफल हुई है। प्रारम्भ से ही खराबी को रोकना अच्छा है न कि उसके बढ़ने पर इसका इलाज करना।

* * *

टिप्पणी :

तुलसी में अपार औषधीय गुण

—डा. वासुदेव प्रसाद यादव

98, अशोक नगर, आगरा-282 002.

तुलसी के विभिन्न भागों का प्रयोग प्राचीन काल से ही घरेलू औषधि के रूप में किया जाता रहा है। आयुर्वेद साहित्य तुलसी की पत्तियों, छाल, बीज इत्यादि के औषधीय उपयोग से भरा पड़ा है। तुलसी में एक आदर्श कीटनाशक की सभी प्राकृतिक विशेषताएं विद्यमान हैं। इसीलिए, तुलसी को देवतुल्य और पूज्य माना जाता है। घर में तुलसी का पौधा होने से परिवार का प्रत्येक सदस्य स्वस्थ, निरोग और दीर्घायु होता है। गंगा की तरह तुलसी में पवित्र करने की असीम क्षमता है। तुलसी की गंध को ग्रहण की हुई हवा जहां-जहां जाती है, वहां की हवा स्वास्थ्यवर्धक हो जाती है।

तुलसी का औषधीय ज्ञान हमारे घरों में लगभग प्रत्येक बड़ी-बूढ़ी को होता है। कुछ बुजुर्ग लोग तो इस विषय में अच्छी-खासी जानकारी रखते हैं। आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि नयी पीढ़ी भी यह उपयोगी ज्ञान उनसे हस्तगत करले, जिससे कि वह पुरानी पीढ़ी के साथ ही लुप्त न हो जाये।

तुलसी के विषय में यहां विस्तार में जानना संभव नहीं है। सदियों से व्यवहार में आने के कारण कुछ सरल तुलसी-नुस्खे इतने प्रामाणिक, सिद्ध और उपयोगी हैं कि समय पर घर में इनसे काम चल जाता है। पैसे, समय और परेशानी की बचत करनेवाले ऐसे कुछ सरल तुलसी-नुस्खे दिये जा रहे हैं, जिनसे पाठक लाभ उठा सकें।

1. **सर्प कांटने पर –**

(क) सांप काटने पर तत्काल रोगी को तुलसी के पत्ते खिलाने चाहिए।

(ख) यदि रोगी बेहोश हो गया हो, तो तुलसी के पत्तों का रस उसके कान में डालना चाहिए।

(ग) सांप के रोगी को तुलसी के पत्तों के रस का लेप मस्तिष्क, कपोल और छाती पर करना चाहिए। साथ ही, केले के थम्भ का रस 10–10 मिनट बाद एक-एक औंस पिलाने से रोगी स्वस्थ हो जाता है।

2. **गर्भ-निरोधक** – तुलसी के पत्तों का काढ़ा रजोदर्शन के बाद तीन दिनों तक एक-एक प्याला पीने से गर्भ नहीं ठहरता है।

3. **मूर्छा** – तुलसी के पत्तों का रस सेंधा नमक में मिलाकर नाक में डालने से बेहोशी दूर हो जाती है।

4. **कफ रोग** – तुलसी के पत्तों के रस में सेंधा नमक मिलाकर पीने से दमा और कफ का नाश होता है।

5. **वात रोग** – काली तुलसी 6 भाग, निर्गुण्डी की जड़ 4 भाग, मांग 6 भाग, मलकगनी की जड़ 2 भाग, सोंठ 1 भाग तथा सहजन की छाल 1 भाग मिलाकर कूट-पीसकर चूर्ण बना लें। प्रतिदिन 3 माशा चूर्ण शहद के साथ मिलाकर चाटने से पुराना से पुराना वातरोग भी ठीक हो जाता है।

6. **बाल-रोग** :

(क) तुलसी के पत्तों का काढ़ा पिलाने से बच्चों के यकृत-संबंधी सभी रोग ठीक हो जाते हैं।

(ख) तुलसी के पत्तों का शर्बत पिलाने से बच्चों की खांसी, सर्दी-जुकाम, उल्टी, दस्त, पेट फूलना आदि रोग ठीक हो जाते हैं।

7. **रतौंधी** – तुलसी के पत्तों का रस आँख में डालने से रतौंधी ठीक हो जाती है।

8. **कर्णशल** – तुलसी के पत्तों का रस गर्म करके कान में डालने से कान का दर्द ठीक हो जाता है।

9. **दंतशूल** – काली मिर्च के चूर्ण और तुलसी के पत्तों के रस को मिलाकर गोली बना लें। इस गोली को दांत की बगल में रखने से दांत का दर्द ठीक हो जाता है।

10. **कान की बगल की सूजन** – तुलसी के पत्ते, अरण्ड की कोपलें और थोड़ा-सा नमक मिलाकर पीस लें। इसका गर्म-गर्म लेप करने से कान की सूजन ठीक हो जाती है।

11. **चर्मरोग** – चर्मरोग में तुलसी का उपयोग बहुत लाभदायक है। कुष्ठरोग, शरीर पर सफेद दाग, काले दाग, मुंह पर कील और झुर्रियां होने पर तांबे के बर्तन में तुलसी के पत्तों का रस डालकर तथा धूप में गाढ़ा करके लगाने से ये रोग ठीक हो जाते हैं।

12. **ज्वर** – तुलसी के पत्ते, गाजपा ब्राह्मी, नीम, गिलोय, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और अमलतास का गूदा–इन सब चीजों को दो-दो माशा लेकर तथा कूट-पीसकर पाव भर पानी में गर्म करना चाहिए। जब डेड़ छटांक पानी रह जाये, तब उतारकर तथा छानकर पिलाने से सब प्रकार के ज्वर ठीक हो जाते हैं।

लखनऊ स्थित केंद्रीय औषधीय एवं सगन्ध पौध संस्थान (सी.आई.एम.ए.पी.) में तुलसी के औषधीय गुणों एवं उपयोग पर अनुसंधान कार्य चल रहा है।

टिप्पणी :

कीड़ों द्वारा कीड़ों का नियंत्रण

के. के. पालिवाल

एसिस्टेन्ट ब्रीडर (पल्सेस), आर. ए. के. कृषि महाविद्यालय, सेहोर–466 001.

जैसे जहर की दवा जहर है, ठीक उसी तरह प्रकृति ने फसलों पर लगने वाले हानि कारक कीड़ों को नियंत्रित करने और एक सन्तुलन बनाये रखने के लिए पक्षी और कीड़े आदि भी पैदा किये हैं। कृषि की नयी तकनीकी एवं रसायनों के अधिक उपयोग ने इस संतुलन को बिगाड़ दिया है। इसी की वजह से दवाइयों की मात्रा बढ़ाने पर भी हानिकारक कीड़े कम नहीं होते हैं। इसी के समाधान के लिए, कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान फिर से प्रकृति में पाये जाने वाले इन मित्र पक्षियों, कीड़ों आदि की ओर गया है। यहां फसलों के नुकसान दायक कीड़ों को कीड़ों द्वारा नष्ट करने के प्रयासों संबंधी जानकारी दी जा रही है।

प्रकृति ने प्रत्येक जीव की संख्या को संतुलित रखने की व्यवस्था की है। हानिकारक कीड़ों को मैना, नीलकंठ, बगुला, अन्य चिड़ियां आदि खा लेते हैं। साथ ही, इन्हीं कीड़ों को उनके विभिन्न परजीवी कीट, सूक्ष्म जीवाणु आदि भी खाकर नष्ट कर देते हैं एवं संख्या बढ़ने नहीं देते। कृषि में अधिक पैदावार के लिए नयी खोजें, जैसे, रासायनिक खादों का प्रयोग, उन्नत किस्मों की फसलों को लगातार वर्ष भर उगाना, सिंचाई आदि के कारण उत्पादन तो बढ़ने लगा परन्तु दूसरी तरफ कीट-रोग के प्रकोप भी बढ़ने लगे। तब वैज्ञानिकों ने रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग को बढ़ाया। व्यापारिक फसलें जैसे गन्ना, धान, कपास आदि में जिन पर प्राकृतिक रूप से अधिक कीट प्रकोप होता है कीटनाशकों के अधिक उपयोग से अधिक उपज प्राप्त होने लगी है। परन्तु, इसके कई विपरीत परिणाम समस्या के रूप में उभरे जैसे हानिकारक कीड़ों को नियंत्रित रखने वाले पर-जीवियों का सर्वनाश, क्योंकि कीड़ों की अपेक्षा उनके परजीवी कीड़े अधिक सूक्ष्म एवं नाजुक होने से ज्यादा प्रभावित होते हैं। इससे हानिकारक कीट अधिक बढ़ने लगते हैं। परजीवियों का अंकुश हटने से नये कीड़े जो पहले फसलों पर कभी आक्रमण नहीं करते थे, वे भी अब

फसलों को अधिक नुकसान करने लगे हैं। हिलियोथिस डेन्डूछेदक (चने की इल्ली) का प्रकोप 15 साल पहले कपास पर बहुत कम होता था परन्तु अब यह इल्ली अनेक राज्यों व देशों में कपास की मुख्य समस्या है। इसी तरह, तम्बाखू की इल्ली, प्रोडेनिया, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में कपास के लिए बड़ी समस्या बन गयी है। मक्का की मोंजर में मौला (एफिड्स) व ज्वार के मुट्टे के कीड़ों के अधिक लगने की शिकायत कृषकों की आम हो गयी है। यह समस्याएं विश्वव्यापी होने के कारण वैज्ञानिकों का मत है कि फसलों के हानिकारक कीड़ों के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का प्रयोग जब आवश्यक हो तभी करना चाहिए।

इनके लिए सूक्ष्मजीवी, परजीवी कीड़ों व पक्षी आदि के द्वारा हानिकारक कीड़ों के नियंत्रण यानी जैविक नियंत्रण को बढ़ावा देना आवश्यक है। हानिकारक कीड़ों के नियंत्रण में विभिन्न प्रकार के कीड़े खाने वाले पक्षी (मैना, नीलकंठ) मेंढक, गिरगिट, सूक्ष्म जीवाणुओं के साथ अनेक जातियों के शिकारी व परजीवी कीड़ों का अपना महत्व है। शिकारी कीट (प्रिडेट) अपने जीवन निर्वाह के लिए हानिकारक कीड़ों के अंडे, बच्चे, इल्ली, वयस्क आदि को खाते हैं। परन्तु परजीवी (पेरासाइटस) हानिकारक कीड़ों के अंडे, बच्चे, इल्ली आदि पर अपने अंडे देते हैं। अंडों से इल्ली निकालकर इनको खाकर, धीरे-धीरे नष्ट कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इस प्रकार के कीड़ों को खोजने के लिए हमें अपने यहां कीड़ों के साथ उपलब्ध परजीवियों व सूक्ष्म जीवों आदि के गहन अनुसंधानों की जरूरत है। भारत वर्ष में फसलों के कुछ हानिकारक कीड़ों के नियंत्रण के लिए कई दूसरे देशों से भी कई शिकारी कीट व परजीवी कीड़ों का आयात किया गया है, जैसे काटनी कुशन स्केल नामक कीड़े के नियंत्रण के लिए राजेलिया कार्डेलिलिस नामक मक्षी कीट तथा गन्ने व कपास के छेदक कीड़ों को नष्ट करने के लिए उदाय कोग्रामा नामक कीट का सफलतम उपयोग किया गया।

इन परजीवियों का सीधे कीट नियंत्रण में उपयोग करने के लिए इनके जीवन चक्र, भोजन, कीट-नियंत्रण क्षमता आदि के गहन अध्ययन के बाद विशेष अनुकूल परिस्थितियों में प्रयोगशाला में इनकी संख्या बढ़ाकर कीट प्रयोग के समय खेत में छोड़ा जाता है। परन्तु कृषकों को यह अनुसंधान-उपरान्त जानकारी मिलने के पहले कृषक बन्धु सिर्फ इन परजीवियों के महत्व को समझकर कीटनाशक दवाइयों के अंधाधुंध उपयोग द्वारा इन्हें नष्ट न करें तो यह लाभदायक होगा।

इस तरह जैविक नियंत्रण के द्वारा कम खर्च में हम अधिक कीट नियंत्रण कर अधिक पैदावार, प्राकृतिक संतुलन बनाये रखते हुए, ले सकते हैं।

टिप्पणी :

फफूंद जनित उपयोगी अम्ल

—गोपाल भारद्वाज
वनस्पति विज्ञान विभाग, आर. बी. एस. कालेज, आगरा—282 002.

पादप जगत में पौधों का एक ऐसा समुदाय भी है, जो हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) रहित होने के कारण अपने पोषण के लिए सड़े गले पदार्थों या विभिन्न जीवधारियों पर आश्रित होता है। इन परजीवी पौधों को कवक या फफूंदी कहते हैं।

सामान्यत: कवकों को हानिकारक माना जाता है तथा इससे होने वाली हानि पर ही ज्यादा ध्यान जाता है, किन्तु कवकों से अनेकों लाभ हैं। अनेकों प्रकार के लाभदायक कार्बनिक अम्ल भी कवकों से प्राप्त किये जाते हैं। इन अम्लों का हमारे औद्योगिक एवं दैनिक जीवन में अत्यधिक महत्व है, यह अम्ल खाद्य पदार्थों में भी उपयोग किये जाते हैं। साइट्रिक अम्ल, ग्लूकोनिक अम्ल, गैलिक अम्ल, इटाकोनिक अम्ल, कोजिक अम्ल, लेक्टिक अम्ल, जिवरेलिक अम्ल, एमोडिक अम्ल इत्यादि

फफूंदों से प्राप्त होने वाले महत्वपूर्ण अम्ल हैं :

1. **साइट्रिक अम्ल :** यह **एस्पर्जिलस** की कई प्रजातियों, **पैनिसिलियम ग्लूकम, म्यूकर पायरिफोर्मिस** आदि से प्राप्त होता है। अब इसे **साइट्रोमाइसिस पेफरिएनूर** और **साइट्रोमाइसिस ग्लैबर** द्वारा भी तैयार किया जाता है। यह साइट्रेटों के निर्माण, दर्पण पर कलई करने, रोशनाई तथा रंग तैयार करने में प्रयुक्त होता है। यह तत्वों को स्वादिष्ट बनाने में सॉफ्ट ड्रिंक, कन्फेक्शनरी एवं कृत्रिम खाद्य रंजकों में प्रयुक्त होता है। औषधि निर्माण में भी प्रयुक्त होता है।

2. **ग्लूकोनिक अम्ल :** यह **पेनीसिलियम, म्यूकर** की प्रजातियों तथा **एस्पर्जिलस फ्यूमैरिकस** से प्राप्त किया जाता है। साथ ही यह **फ्यूमैगो वेगेनस** से भी प्राप्त किया जाता है। यह डेरी उद्योग, कपड़ा उद्योग एवं चमड़ा उद्योग में उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग दवाएं बनाने में, फोटोग्राफी में तथा टूथपेस्ट बनाने में होता है। यह गर्भवती स्त्रियों को कैल्शियम ग्लूकोनेट के रूप में दिया जाता है।

3. **गैलिक अम्ल :** यह **एस्पर्जिलस नाइजर, ए. गैलोमाइसील** तथा **पेनीसिलियम** की प्रजातियों का उपापचयिक उत्पाद है। यह नीले वर्णक एलिजेरीन ब्राउन के निर्माण में काम आता है। यह अमेरिका में नाविकों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त नीले रंग के निर्माण में प्रयुक्त होता है। इसमें फेरस सल्फेट मिला देने से स्याही का निर्माण होता है। यह पाइरोगैलौल नामक फोटोग्राफिक डेवलपर तथा गैलोसाइनिन के बनाने में प्रयुक्त होता है। यह कई त्वचा रोगों में भी प्रयुक्त होता है।

4. **इटाकोनिक अम्ल :** यह **एस्पर्जिलस इटाकोनिकस** और **ए. टेरियस** से प्राप्त होता है। इसका प्लास्टिक उद्योग और ऑप्टिक्स में उपयोग होता है। इसकी सहायता से कृत्रिम रेशे तथा एल्काइल रेजिन्स का उत्पादन होता है। इसके द्वारा न टूटने वाली कांच एवं नकली जवाहरात का निर्माण होता है।

5. **कोजिक अम्ल :** यह **एस्पर्जिलस** की कई प्रजातियों तथा **पेनीसिलियम डालियां** में पाया जाता है। यह एन्टीसेप्टिक है तथा कीटनाशक भी है। यह पाइरीडीनों, ईथरों, एस्टरों तथा ऐजो रंजकों में प्रयुक्त होता है। यह लोहे के एक विश्लेषण रसायन की तरह काम आता है।

6. **फ्यूमैरिक अम्ल :** यह **राइजोपस नाइग्रीकेंस** से प्राप्त होता है। यह पेय पदार्थों में प्रयुक्त होता है। यह रबर उद्योग तथा एल्कायल रेजिन बनाने में भी प्रयुक्त होता है। यह वेटिंग एजेंट है।

7. **लेक्टिक अम्ल** : यह **राइजोपस ओरिजाई** एवं **म्यूकर रौकसाई** से प्राप्त होता है। इसका भोज्य पदार्थों एवं औषधियों में प्रचुरता से उपयोग किया जाता है।

8. **जिबेंलिक अम्ल** : यह वृद्धि हार्मोन है तथा पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है। यह **फ्यूसेरियम मोनीलीफॉर्मी** एवं **जिबेंलिया फ्यूजीकोराई** से प्राप्त होता है।

9. **एमोडिक अम्ल :** यह **पैनिसीलियम साइक्लोपियम** से प्राप्त होता है। इससे वर्णक का संश्लेषण होता है।

10. **प्यूबिरुलिक अम्ल :** यह **पैनिसिलियम प्यूबीरुलम** से प्राप्त होता है। यह एक प्रतिजैविक है।

11. **माइकोफनॉलिक अम्ल :** यह **पैनिसिलियम ब्रेवीकम्पैक्टस** से प्राप्त होता है। यह एक प्रतिजैविक है।

12. **टलीफोटिक अम्ल :** येह **थैलीफोरा** प्रजाति से प्राप्त होता है। इससे इण्डिया ब्ल्यू नामक वर्णक प्राप्त होता है।

टिप्पणी :

दूरवर्ती ग्रह 'नेपच्यून'

–गणेश कुमार पाठक

द्वारा प्रतिभा प्रकाशन, निकट वैशाली होटल, बालिया-277 001.

'नेपच्यून' ग्रह को भारतीय मनीषियों ने 'वरुण' नाम दिया है। वैसे यह ग्रह सौरमण्डल का दूसरा सबसे दूरवर्ती ग्रह है। किन्तु अपनी व सौरमण्डल की ग्रहों की परिधीय विशेषताओं के कारण आजकल यही ग्रह सौरमण्डल का सबसे दूरवर्ती ग्रह हो गया है। कुछ समय बाद पुनः यह सौर मण्डल का दूसरा सबसे दूरवर्ती ग्रह हो जायेगा। इसीलिए इसे सौरमण्डल का दूसरा दूरवर्ती ग्रह ही माना जाता है। इस प्रकार, यह ग्रह हमारे सौर-मण्डल के नवग्रहों में दूरी के अनुसार आठवें स्थान पर आता है।

वर्ष 1846 में एक फ्रांसीसी खगोलविद लिवेरियर ने गणित के द्वारा यूरेनस के आगे एक ग्रह होने की कल्पना की थी। उस समय तक हमें मात्र सात ग्रहों का ही पता था। सभी ग्रहों के बीच आकर्षण होता है एवं सूर्य इन सभी ग्रहों को आकर्षित करता है। आकर्षण के इस सिद्धांत पर ही गणितीय गणना कर नेपच्यून की खोज की गयी एवं लिवेरियर की सम्भावना सत्य हो गयी।

नेपच्यूच ग्रह हमारी पृथ्वी से लगभग 500 करोड़ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसलिए पृथ्वी से एक चमकदार बिन्दु की तरह दिखायी देने वाले इस ग्रह को अत्यन्त शक्तिशाली दूरबीन द्वारा ही स्पष्टतया देखा जा सकता है। वैसे यह ग्रह सौरमण्डल के सबसे बड़े चार ग्रहों में चौथा स्थान भी रखता है। इस प्रकार यह ग्रह हमारी पृथ्वी से बड़ा है। इस ग्रह के दो उपग्रह ट्रिटान एवं निरीड हैं। किन्तु वर्तमान समय में दो और उपग्रह ढूंढ़ लिये गये हैं।

ट्रिटान उपग्रह की खोज वर्ष 1946 में की गयी थी जिसका व्यास 5280 किलोमीटर है। नेपच्यून से इस उपग्रह की दूरी 3,55,200 किलोमीटर है। यह उपग्रह नेपच्यून की परिक्रमा 5 दिन, 21 घंटा 3 मिनट में करता है। निरीड उपग्रह की खोज वष 1949 में की गयी थी। इसका व्यास 3200 किलोमीटर

नेपच्यून ग्रह – एक नज़र में

खोज वर्ष – वर्ष 1846

सूर्य से औसत दूरी –

1. दस लाख किलोमीटर में – 4529.0

2. खगोलीय एकक में – 30.06

भूमध्य रेखीय व्यास – 49,50,000 किलोमीटर

त्रिज्या (पृथ्वी की त्रिज्या = 1 मानकर) – 3.50

सूर्य की परिक्रमा का समय (कक्ष भ्रमण) – 164.8 वर्ष

परिभ्रमण काल (अक्ष भ्रमण) – 15 घंटा 48 मिनट

परिभ्रमण की गति (प्रति सेकण्ड) – 5.6 किलोमीटर

द्रव्यमान –

1. सूर्य का द्रव्यमान = 1 मानकर–1/19310

2. पृथ्वी की मात्रा इकाई मानकर – 17.26

मात्रा (पृथ्वी की मात्रा = 1 मानकर) – 57

औसत घनत्व (जल का घनत्व इकाई मानकर) – 2.47

धरातलीय गुरुत्व (पृथ्वी = 1 मानकर) – 1.18

कक्षा के क्रांतिवृत्त के साथ झुकाव – 1.8°

कक्षा की उत्केन्द्रता – 0.009

अधिकतम तापमान – –220° सेल्सियस

उपग्रहों की संख्या – 4

मुख्य गैसों की प्राप्ति – हाइड्रोजन, हीलियम, एवं मीथेन

अन्य विशेषताएं – ग्रह के चारों तरफ वलय का घेरा

पृथ्वी से दूरी – 500 करोड़ किलोमीटर

है एवं नेपच्यून से इसकी दूरी 55,36,000 किलोमीटर है। 'निरीड' उपग्रह नेपच्यून ग्रह की परिक्रमा 359 दिन में करता है।

नेपच्यून ग्रह सूर्य से 45,00,00,00,00 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस प्रकार, यह ग्रह सूर्य से 30 खगोलीय एकक की दूरी पर स्थित है। सूर्य से इतना अधिक दूर होने के कारण यह ग्रह अत्यंत ही ठण्डा है। यहां का तापमान – 220 से. है। इस ग्रह पर गर्मी नाम मात्र की भी नहीं पड़ती। अतः, इस ग्रह पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

नेपच्यून ग्रह पृथ्वी के 164.8 वर्ष में सूर्य की एक बार परिक्रमा करता है। इस प्रकार इस ग्रह का एक वर्ष पृथ्वी के 164.8 वर्ष के बराबर होता है। इस तरह अपनी खोज के बाद अभी तक यह सूर्य की एक बार भी परिक्रमा नहीं कर पाया है। यह ग्रह अपने अक्ष पर 15 घण्टा 48 मिनट में एक चक्कर पूरा करता लेता है। इस प्रकार इस ग्रह पर दिन रात 15 घण्टा 48 मिनट का होता है।

नेपच्यून ग्रह का भूमध्य रेखीय व्यास 495,000 किलोमीटर है, जो पृथ्वी के व्यास का 3.88 गुना है। इसका आयतन पृथ्वी के आयतन का 17.26 गुना एवं घनत्व 2.47 है। नेपच्यून ग्रह पर अनेक प्रकार की गैसें पायी जाती हैं जिनमें हाइड्रोजन, हीलियम एवं मीथेन मुख्य हैं।

वर्ष 1985 में यह सम्भावना व्यक्त की गयी थी कि एक वलय इस ग्रह को बायें तरफ से घेरे हुए है, जो बृहस्पति, शनि एवं यूरेनस के वलयों से भिन्न है। वह उस स्थान के आस पास स्थित है, जहां से वोयजर–2 अन्तरिक्ष यान 24 अगस्त 1989 को गुजरा। यह वलय अन्य ग्रहों के वलयों की तरह पूर्ण गोलाकार नहीं, बल्कि एक उसका अंश मात्र है। यह अनुमान लगाया गया है कि इस वलय का भाग 10 किलोमीटर लम्बा है और यह यूरेनस के केन्द्र से 75,000 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

टिप्पणी :

दिल की दास्तान

– प्रो. सीताराम सिंह 'पंकज',

अध्यक्ष, जंतुविज्ञान विभाग, के. एस. आर. कालेज, सरायरंजन, समस्तीपुर–848 127

दिल के संबंध में वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों के विचार साहित्यकारों और शायरों से बिल्कुल भिन्न हैं। सच पूछिए तो दिल को जितना नाजुक हम समझते हैं, वह उतना नाजुक या कमजोर नहीं होता। न ही दिल में प्यार-मुहब्बत जैसी कोई बात होती है। यह शक्तिशाली मांसपेशियों का बना होता है। हृदय वह संरचना है, जो गर्भावस्था से लेकर जीवन की आखिरी सांस तक मनुष्य का साथ देती है। शरीर के अन्यान्य अंग, जैसे आंख, कान, हाथ, पैर, गुर्दे इत्यादि साथ छोड़ दें तो भी काम चल सकता है। किंतु हृदय का साथ छूट जाए, तो संसार ही छूट जाता है।

हृदय – एक महत्वपूर्ण अंग

हृदय मानव शरीर का एक बहुत ही महत्वपूण अंग है। यह बंद मुठ्ठी की तरह होता है, जो जन्म से पूर्व भी धड़कता रहता है। हृदय गुलाबी रंग की रचना होती है। इसका वजन लगभग 250 ग्राम होता है। यह 6 इंच लंबा और 4 इंच चौड़ा होता है। बाहर की ओर यह एक सुरक्षात्मक आवरण (पेरिकार्डियम) से ढका होता है। पेरिकार्डियम दोहरी झिल्ली वाली एक रचना होती है, जिसकी दोनों परतों के बीच एक द्रव भरा रहता है। यह हृदय को बाहरी आघातों से बचाता है।

संरचना

दिल एक विशिष्ट प्रकार के ऊतकों का बना होता है जिसे हृदय पेशी कहते हैं। इसमें ऊपर दो अलिंद तथा नीचे दो निलय होते हैं। हृदय पेशियां कभी विश्राम नहीं करती हैं। सच पूछिए तो ये मांसपेशियां पहलवान की बांह की मांसपेशियों से भी ज्यादा मजबूत होती हैं। हृदय में काम करने की अदम्य क्षमता होती है। सामान्य रूप से इस शक्ति का दसवां हिस्सा ही हम उपयोग में लाते हैं। हृदय को निरंतर कार्य करने के लिए उर्जा की आवश्यकता पड़ती है। यह उर्जा हृदय को रक्तप्रवाह के माध्यम से प्राप्त होती है। पेंसिल के आकार की दो रक्त-वाहिनियां हृदय को ऊर्जा पहुंचाती हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, जैसे, व्यायाम, कठिन श्रम, उत्तेजना, संभोग या मानसिक तनाव के दौरान। किंतु, इसकी धड़कन प्रतिमिनट 220 से ऊपर नहीं बढ़ सकती है। सामान्य स्थिति में हृदय प्रतिमिनट 72 बार धड़कता है, अर्थात् एक दिन में यह लगभग 100000 बार तथा एक वर्ष में 37,000,000 बार धड़कता है। हृदय की धड़कन का मनुष्य के स्वभाव, भोजन, कार्य, बीमारी, संवेदनशीलता तथा वातावरण से विशेष संबंध है।

एक शक्तिशाली पंप

मानव हृदय एक शक्तिशाली पंप की तरह कार्य करता है। यह शिराओं द्वारा लाये गये दूषित रक्त को फेफड़ों में भेजकर शुद्ध करता है। शुद्ध रक्त धमनियों द्वारा शरीर के सभी अंगों, ऊतकों और कोशिकाओं तक पहुंचा दिया जाता है। हृदय पेशियों में निरंतर संकोचन और शिथिलन होता रहता है। हृदय शरीर में फैले धमनियों और शिराओं के 96 हजार किलोमीटर लंबे जाल में निरंतर रक्त संचार करता रहता है। कल्पना कीजिए अगर हृदय 3–4 मिनट के लिए काम करना बंद कर दे तो क्या होगा !

गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क बनने से बहुत पहले उसके हृदय का निर्माण हो जाता है। अतः, दिल को धड़कने के लिए मस्तिष्क के आदेश की जरूरत नहीं होती। चिकित्सक किसी व्यक्ति को मृत तभी घोषित करता है, जब उसके हृदय की धड़कन बंद हो जाती है।

दिल के रोग

अगर दिल को उसकी आवश्यकतानुसार समुचित रक्त मिलता रहे तो कोई अनियमितता नहीं पैदा होती है। किंतु जब उसकी रक्त नलिकाओं में वसा (कोलेस्टेरोल) की परत जमने लगती है, तब इन नलिकाओं का आयतन कम हो जाता है और हृदय को जरूरत के मुताबिक रक्त नहीं मिलता। यहीं से हृदय से संबंधित समस्याएं उत्पन्न होती हैं। समुचित रक्त और आक्सीजन के अभाव में हृदय ठीक ढंग से काम नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को छाती में दर्द महसूस होता है। इसे 'एन्जाइना' रोग कहते हैं। इसकी गंभीर अवस्था को ही हृदय का आघात (हार्ट अटैक) कहते हैं। इस बीमारी में किसी बड़ी रक्त नलिका में रक्त का थक्का बन जाने से रक्त प्रवाह बंद हो जाता है और हृदय का वह भाग मृत हो जाता है। ऐसी स्थिति में छाती में बायीं तरफ जोर का दर्द होता है, पसीना आता है तथा बेहोशी आ जाती है। कभी-कभी यह प्राणघातक भी साबित हो सकता है। दिल के रोगों में सबसे खतरनाक 'हार्ट अटैक' ही है।

दिनोंदिन बढ़ते हृदय रोग

आज की भाग-दौड़ भरी जिंदगी, बढ़ते औद्योगीकरण, खानपान की अनियमितता, मानसिक तनाव तथा अन्य कारणों से हृदय के रोगों में निरंतर वृद्धि हो रही है। जाहिर है कि हृदय रोगों से प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति असमय काल कलवित हो जाते हैं। एक ताजा सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 3 करोड़ से भी अधिक व्यक्ति हृदय की रक्त वाहिनियों के रोग से पीड़ित हैं। विशेषज्ञों के अनुसार पिछले दो दशकों में हमारे देश में हार्ट अटैक के कारण हुई मृत्युदर में 225% की वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त लगभग 4 करोड़ व्यक्ति उच्च रक्तदाब (हाई ब्लडप्रेशर) के रोगी हैं तथा देश में 60 लाख बच्चे रिह्यूमेटिक हृदय रोग से पीड़ित हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की हाल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार इस सदी के अंत तक विकासशील देशों में हृदय तथा वाहिनियों के रोगों से

मरनेवालों की संख्या अन्य बीमारियों से हुई कुल मौतों का 15 से 20 प्रतिशत हो जाएगी। संगठन के सलाहकार डा. सिलास डोडू का कहना है कि इन देशों में हृदय तथा वाहिनियों के रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। सच पूछिए तो औद्योगिक देशों की सबसे बड़ी बीमारी हृदय रोग ही है। किंतु जीवन की बढ़ती विलासिता के कारण छोटे-छोटे विकासशील देश भी इसकी चपेट में आ गये हैं। उच्च रक्तदाब, मधुमेह, धूम्रपान, अधिक मानसिक तनाव, भोजन की अनियमितताएं, कारोनरी, धमनी रोग दिल के दौरे के मुख्य कारण होते हैं। ताजा सर्वेक्षण के अनुसार भारत में एक हजार व्यक्तियों में से 65.4 पुरुष तथा 47.8 स्त्रियाँ हृदय रोगों से पीड़ित हैं। आंकड़े बताते हैं कि संक्रामक रोगों की अपेक्षा हृदय रोग तथा वाहिनियों के रोग से मरने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

हृदय को प्रभावित करने वाले कारक

आधुनिक अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि हृदय की क्रियाविधि को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। कठिन शारीरिक श्रम करने वाले के दिल को नुकसान नहीं होता, किंतु ज्यादा मानसिक श्रम करने या तनाव-ग्रस्त रहने वाले के दिल पर इसका बुरा असर पड़ता है। गर्मी में दिल की धड़कन बढ़ जाती है। इसी प्रकार, जाड़े में शरीर को गर्म रखने के लिए हृदय को ज्यादा काम करना पड़ता है। नशीले पदार्थों का सेवन तथा धूम्रपान भी दिल को बुरी तरह प्रभावित करता है। इतना ही नहीं, अधिक चिकनाई या कोलेस्टेरोल युक्त खाद्यपदार्थों का सेवन भी हृदय के लिए हानिकारक है। चिकित्सकों के अनुसार एक कठिन श्रम करने वाले मजदूर का हृदय किसी बुद्धिजीवी (डाक्टर, वकील, प्रोफेसर, पत्रकार) की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होता है। इसका कारण यह है कि बुद्धिजीवी ज्यादा चिंतित और तनावग्रस्त रहते हैं। हमारा हृदय स्वस्थ रहे, इसके लिए जरूरी है कि हमारा भोजन संतुलित किंतु ज्यादा वसा युक्त न हो।

हृदय रोगों के उपचार

हृदय रोगों के उपचार की दिशा में पिछले दशकों में महत्वपूर्ण शोध हुए हैं। हृदय का पूरा हालचाल बतानेवाली मशीन इ.सी.जी. है। यह हृदय पेशियों तथा उसकी धड़कनों की विस्तृत जानकारी देती है। हृदय के इ.सी.जी. (इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम) से हृदय की अनियमितताओं की जानकारी मिलती है। इ.सी.जी. से भी ज्यादा उपयोगी एनजीयोकार्डियोग्राफी तकनीक है। इससे हृदय की रक्त नलिकाओं का स्पष्ट चित्र दिखने लगता है। गामा कैमरा, ओपेन हार्ट सर्जरी, बाई पास सर्जरी ने भी हृदयरोगों को दूर करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। हृदय के आपरेशन की सुविधा जो पहले केवल विदेशों में उपलब्ध थी, अब भारत में भी सुलभ हो गयी है। वैसे, हृदय के आपरेशन में बहुत अधिक खर्च आता है।

दक्षिण अफ्रीका के डा. क्रिश्चन बर्नार्ड का नाम हृदय-चिकित्सा के क्षेत्र में सदैव अमर रहेगा जिसने 3 दिसंबर 1967 को पहला हृदय-प्रतिरोपण का ऑपरेशन किया था। अब तक सैकड़ों सफल हृदय प्रतिरोपण ऑपरेशन किये जा चुके हैं। किंतु यह काफी खर्चीला काम होता है। एक प्रतिरोपण में तकरीबन एक लाख डालर का खर्च आता है। भारत में भी ऐसे तीन ऑपरेशन किये जा चुके हैं, किंतु दुर्भाग्यवश वे सफल नहीं हुए। कृत्रिम हृदय का भी निर्माण किया गया है। चिकित्सकों का अनुमान है कि वर्ष 2000 तक हृदय को वैसे ही बदला जा सकता है जैसे गाड़ियों के स्पेयर पार्टस्! और तब आपका दिल खराब हो जाए, तो दूसरा कृत्रिम दिल मजे में लगा सकते हैं।

* * *

टिप्पणी :

कैल्शियम की उपादेयता

–डॉ. डी. डी. ओझा

ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर–342 001.

पोषक खनिज तत्वों में हमारे शरीर के लिए कैल्शियम का विशेष महत्व है। हमारे शरीर के कुल भार का लगभग दो प्रतिशत कैल्शियम ही है। इस तत्व की कमी से शरीर की बढ़वार सही ढंग से नहीं हो पाती है। विशेषतः हड्डियों तथा दांतों पर इसकी कमी का बुरा प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक प्रेक्षणों के अनुसार गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली माताओं को इसकी अधिक आवश्यकता होती है (एक ग्राम प्रतिदिन)।

कैल्शियम के कार्य : इस तत्व के मानव शरीर में काफी कार्य हैं जो कि निम्नलिखित हैं :

(i) यह तत्व फासफोरस के साथ हड्डियों को बनाने, बढ़ाने तथा मजबूत करने में सहायक होता है। (ii) कैल्शियम तत्व सोडीयम, पोटेशियम तथा मैगनीशियम के साथ मिलकर मांसपेशियों में संकुचन पैदा करके सभी अंगों को सक्रिय रखता है। (iii) यह रक्त जमाने में भी सहायक होता है। (iv) यह हृदय की धड़कन को नियमित रखता है। (v) स्नायु संस्थान की उचित क्रियाशीलता, उसकी प्रतिक्रियाओं के संचालन और कोशिकाओं की पारगम्यता के लिए भी कैल्शियम का होना नितान्त आवश्यक है। (vi) स्तनधारी प्राणियों को शिशु अवस्था में दूध के पाचन में मदद करता है।

कैल्शियम के स्रोत : दूध में कैल्शियम सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। दूध से बने पदार्थ जैसे दही, पनीर, खोया, छाछ इत्यादि इसके प्रमुख स्रोत हैं। अण्डा, मछली में भी कैल्शियम की काफी मात्रा पायी जाती है। पालक, मेथी, चौलाई, सोयाबीन, तिल, काजू, अंजीर, खजूर, बदाम आदि भी इसके अच्छे स्रोत हैं।

कैल्शियम की कमी के प्रभाव : कैल्शियम की कमी से निम्न रोगों की संभावना बनी रहती है :

1. कैल्शियम की कमी से बच्चों की बढ़वार रुक जाती है। हड्डियों की बढ़वार के लिए कैल्शियम और फासफोरस की काफी आवश्यकता होती है। 2. इसकी कमी से बच्चों को सूखा (रिकेट्स) नामक रोग हो जाता है। 3. इस पोषक तत्व की कमी से हड्डियां मजबूत नहीं रहती हैं और शरीर के भार से टेढ़ी हो जाती हैं। 4. कैल्शियम के अभाव में रक्त का थक्का बनने में अधिक समय लगता है। अतः, चोट आदि लगने पर खून अधिक बहता है। 5. गर्भावस्था और दुग्धपान की अवस्था में कैल्शियम की मांग बढ़ जाती है। जब इसकी पूर्ति खाद्य पदार्थों द्वारा नहीं हो पाती तो गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं की हड्डियों में से कैल्शियम काम आने लगता है जिसके कारण बच्चे की कैल्शियम की आवश्यकता तो पूरी हो जाती है लेकिन माँ की हड्डियां कमजोर तथा पतली हो जाती हैं। ऐसी दशा में थोड़ा-सा झटका लगने से भी हड्डियों के टूटने की आशंका बनी रहती है। इस रोग को "आस्टियोमेलेशिया" कहते हैं जो प्रायः गर्भावस्था तथा दुग्धावस्था में होता है।

अतः, कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कैल्शियम का हमारे शरीर में बहुत महत्व है।

* * *

हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1989) के परिणाम

वर्ष 1989 हेतु अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता का विस्तृत विज्ञापन देश की विभिन्न लोकप्रिय और विज्ञान-पत्रिकाओं में इस वर्ष छपवाया गया था जिससे अहिन्दी भाषी लेखकों के 8 लेखों को मिलाकर कुल 162 विज्ञान-लेख प्राप्त हुए । पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष दो प्रोत्साहन पुरस्कार, एक हिन्दी भाषी और एक अहिन्दी भाषी लेखकों के लिए बढ़ा दिये गये । इसके अतिरिक्त, पुरस्कार की राशि में भी पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी है । यद्यपि पुरस्कार दस लेखों को ही मिले हैं जिन्हें 'वैज्ञानिक' में छपा जाएगा, कुछ अन्य लेख भी स्तर के प्राप्त हुए हैं जिन्हें भी छापने का प्रयास किया जायेगा । प्रतियोगिता के परिणाम इस प्रकार हैं :—

1. **प्रथम पुरस्कार** (रु. 750/–)
   काष्ठ की द्वितीय श्रेणी की जातियाँ
   – प्रेम बल्लभ डोरियाल
2. **द्वितीय पुरस्कार** (रु. 500/–)
   कितने कामयाब होंगे वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत
   – राजेंद्र कुमार राय
3. **तृतीय पुरस्कार** (रु. 250/–)
   शीत संलयन – एक संभावना
   – गोपाल कृष्ण रंजन
4. बैटरी के क्षेत्र में खुल रहे नये क्षितीज
   – डा. के. एम. जैन
5. मृत्यु का रहस्य
   – डा. एम. अली

प्रोत्साहन पुरस्कार (प्रत्येक रु. 150/–)

1. भारतीय नदियों में भू-अपरदन
   – किरण द्विवेदी
2. विचार विज्ञान
   – बलवीर तलवाड़
3. उत्परिवर्तन एवं गुणसूत्र
   – डा. हीरामणि गुजरान एवं
   – डा. एस. के. दत्त

अहिन्दी भाषी प्रोत्साहन पुरस्कार (प्रत्येक रु. 150/–)

1. आंकड़े से चालित यंत्र
   – डा. ना. सुंदरेशा
2. ब्रह्मांड की व्युत्पत्ति के सोपान
   – निलेश ह. वायडा

— आयोजक (प्रतियोगिता)

अखिल भारतीय पुरस्कार से सम्मानित : डॉ. सूर्यदेव मिश्र

डॉ. सूर्यदेव मिश्र को राष्ट्र-स्तरीय पुरस्कार "प्रो. जे. जे. चिनाय स्वर्ण पदक, वर्ष 1987" से सम्मानित किया गया है। यह विषय–विशेष का सर्वोच्च पुरस्कार, इंडियन सोसाइटी ऑफ प्लांट फिजिओलोजी, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई-दिल्ली–110 012, द्वारा प्रदान किया जाता है। डॉ. मिश्र, पादप कायिकी अनुभाग, आण्विक जीव-विज्ञान एवं कृषि प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, बंबई–400 085, में पिछले 25 वर्षों से कार्यरत हैं। उन्होंने लगभग 70 शोध-पत्र, राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया है। "पान" पर किये गये आपके शोध कार्यों से पता चला है कि यदि पान के पत्ते के डंठल को पेड़ से उतारते ही, कुछ घंटों में ही, तोड़ दिया जाये अथवा उसे वृद्धिसंवर्द्धकों का छिड़काव दे दिया जाये, तो ऐसे पत्ते साधारण तापमान पर काफी दिनों तक रखे जा सकते हैं। इस उपलब्धि को राष्ट्र-स्तर पर अपनाने के लिए अनुमति प्रदान की जा चुकी है। संप्रति आप वृद्धि-संवर्द्धकों (पी. जी. आर्स) की मदद से जौ तथा केंद्र द्वारा विकिरण पद्धति से विकसित मूंग मूंगफली, सरसों, गेहूं आदि की उत्परिवर्ती प्रजातियों को और अधिक उपजाऊ बनाने जैसे कार्यों में संलग्न हैं। मिश्रजी की प्रथम छात्रा डॉ. (कुमारी) आशा लीलानी, जो कि ऐक्सेल इंडस्ट्रीज, बंबई, में वैज्ञानिक के पद पर कार्य कर रही हैं, "युवा-वैज्ञानिक पुरस्कार–1986" प्राप्त कर चुकी हैं। मिश्रजी केंद्र के हिन्दी प्रचार-प्रसार एवं जन-साधारण तक वैज्ञानिक उपलब्धियों को कैसे पहुंचाया जाये, जैसे कार्यक्रमों से भी संबद्ध रहे हैं तथा इनके प्रेरणा–श्रोत माने जाते हैं।

शुभ कामनाओं सहित

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छठी मन्जिल, 111, महर्षि कर्वे मार्ग,
बंबई–400 020 (भारत)

फोन : 290914-15 टेलेक्स : 011-3122

केबल : रेअर अर्थ बंबई

—: हमारे उत्पादन :—

खनिज :

इलमेनाइट, रुटाइल, जिरकोन, जिरकोनियम यौगिक गारनेट, सिलिमेनाइट और मोनाजाइट

रसायन :

रेअर अर्थ्स क्लोराइड, रेअर अर्थ्स फ्लोराइड, रेअर अर्थ्स आक्साइड, सीरियम आक्साइड, डायडिमियम कार्बोनेट, सीरियम हाइड्रेट, समेरियम / यिट्रियम / गैडोलिनियम सांद्र (कन्सेन्ट्रेट्स), थोरियम / सीरियम नाइट्रेट, थोरियम आक्साइड तथा सिन्थेटिक रुटाइल.

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने, देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में, स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रांबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियोआइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रूप से विकास किया है एवं देश-विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की गयी है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं प्रदत्त सेवाएं इस प्रकार हैं :

* विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
* विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
* रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैंसर रोगोपचार हेतु।
* रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
* गामा किरणन उपस्कर :
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
* विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रूई, शल्य ब्लेड, दस्ताने, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया, अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बंबई–400 094.

टेलीफोन : 5551676 5510401 5514910 (विस्तार – 2773)

तार : ब्रिटएटम, बंबई–94.

टेलेक्स : 11 72212 ब्रिट इन्

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत.

न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन सुनहरे भविष्य का शक्ति-स्रोत

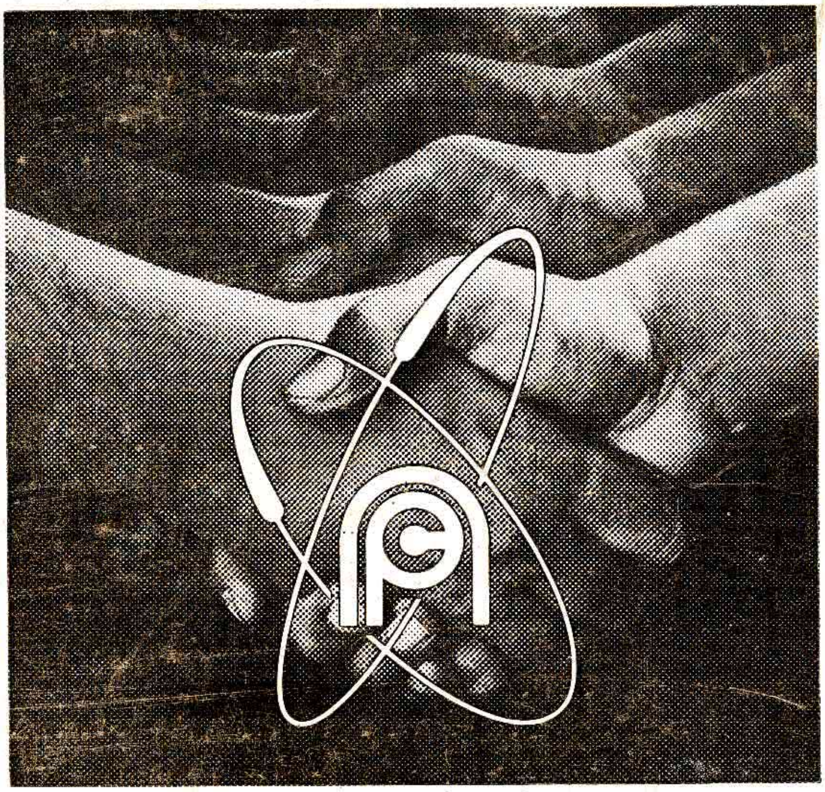

न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन
(भारत सरकार का उद्यम)

मुख्य कार्यालय : होमी भाभा रोड, कोलाबा, बंबई-४०० ००५.

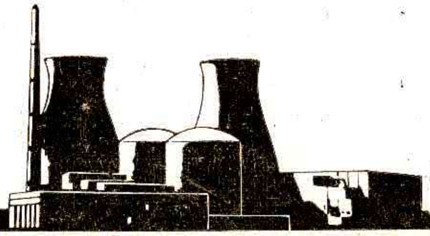

CONTOUR ADS-NPC-53/89

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. जनार्दन स्वरूप द्वारा संपादित तथा डॉ. शिव प्रकाश गर्ग द्वारा
युनिव्हर्सल इंटरप्राइजेस, चेंबूर, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित.